इकाई -1

जीवन परिचय एवं कृतियां (Biography and Works)

इकाई की रुपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 आगस्त कॉम्टे

1. 3 आगस्त कॉम्टे का जीवन-परिचय

1.4 कॉम्टे की रचनाएँ

1.5 सारांश

1.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.7 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.8 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

महान फ्रांसीसी विचारक ऑगस्ट कॉम्टे को 'आधुनिक समाजशास्त्र का जनक' माना जाता है। कॉम्टे पहले विचारक थे जिन्होंने सामाजिक चिंतन को वैज्ञानिक रूप देकर समाजशास्त्रीय चिंतन की एक नई परंपरा की शुरुआत की। उन्होंने पहली बार एक ऐसे सामाजिक विज्ञान की कल्पना की जो अन्य सामाजिक विज्ञानों से अलग और स्वतंत्र रहकर सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक प्रगति का अध्ययन कर सके। शुरुआत में कॉम्टे ने ऐसे विज्ञान को 'सामाजिक भौतिकी' नाम दिया था, लेकिन बाद में 1838 में उन्होंने इसे 'समाजशास्त्र' कहा। इस विज्ञान की विषय-वस्तु की व्याख्या करते हुए कॉम्टे ने लिखा था कि "समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में पाई जाने वाली एकता और सामाजिक व्यवस्थाओं को जानना है ताकि सामाजिक जीवन को व्यवस्थित किया जा सके। इसी कारण उन्होंने समाज की रचना में व्यक्ति, परिवार और राज्य आदि को महत्वपूर्ण स्थान दिया।"

1.01 उद्देश्य

1. इस इकाई में ऑगस्ट कॉम्टे के जीवन परिचय का जान सकेंगे

2. इस इकाई में ऑगस्ट कॉम्टे की कृतियों का अध्यन कर पाएंगे

1.2 आगस्त कॉम्टे

कॉम्टे के विचारों को प्रभावित करने में 1789 की फ्रांसीसी क्रांति का भी स्पष्ट योगदान था। फ्रांसीसी क्रांति के परिणामस्वरूप यूरोप में लंबे समय से चली आ रही सामंती व्यवस्था का अंत हो गया। इस समय कैथोलिक चर्च के पादरियों की अलौकिक शक्ति समाप्त होने लगी, अभिजात वर्ग के पास कोई विशेष अधिकार नहीं रहे और आम जनता की शक्ति बढ़ने लगी। इसी काल में, 1770 से 1830 के बीच, इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति हुई, जिसने यूरोप के कई अन्य देशों में नई परिस्थितियों का निर्माण किया और बौद्धिक वर्ग की सोच को एक नई दिशा देनी शुरू की। इस समय, जहाँ एक ओर मशीनों द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन में तेज़ी से वृद्धि हुई, वहीं दूसरी ओर पारंपरिक कुटीर उद्योगों का तेजी से पतन होने लगा, बेरोजगारी अभूतपूर्व रूप से बढ़ी, शहरी जनसंख्या में तेज़ी से वृद्धि होने लगी और सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं में परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देने लगे। औद्योगीकरण के प्रभाव से पुरानी वर्ग व्यवस्था के स्थान पर एक नई वर्ग व्यवस्था का उदय हुआ। इसके अंतर्गत समाज पूँजीपति, मध्यम वर्ग और मजदूर जैसे तीन मुख्य वर्गों में विभाजित हो गया। फ्रांसीसी क्रांति और औद्योगिक क्रांति के प्रभाव से आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन होने लगा और समाज में अनेक नई समस्याएँ उत्पन्न होने लगीं जिनका समाधान वैज्ञानिक चिंतन से ही संभव था। उन परिस्थितियों में कॉम्टे ने यह सोचना शुरू किया कि समाजशास्त्र के रूप में एक ऐसे विज्ञान का विकास आवश्यक है जिसमें सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक प्रगति का अध्ययन किया जा सके। इसके साथ ही उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि सामाजिक व्यवस्था और प्रगति का अध्ययन केवल कल्पना और कुछ सिद्धांतों के आधार पर नहीं किया जा सकता बल्कि इसके लिए सामाजिक घटनाओं का प्रत्यक्ष अवलोकन, परीक्षण और वर्गीकरण आवश्यक है। इस संदर्भ में कॉम्टे ने सामाजिक पुनर्निर्माण की एक योजना भी प्रस्तुत की जिसके माध्यम से फ्रांस की तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को प्रगति की ओर ले जाया जा सका। समाजशास्त्र में कॉम्टे के इस योगदान को समझाने से पहले उनके जीवन और कार्यों के बारे में संक्षेप में जानना आवश्यक है।

1.3 आगस्त कॉम्टे का जीवन-परिचय (LIFE SKETCH OF AUGUSTE COMTE)

उन्नीसवीं सदी के प्रमुख विचारक और समाजशास्त्र के जनक ऑगस्ट कॉम्टे का जन्म 19 जनवरी 1798 को दक्षिण फ्रांस के मोंटपेलियर (Montpellier) नामक स्थान पर एक कैथोलिक परिवार में हुआ था। उनका पूरा नाम 'इसिडोर ऑगस्ट मैरी फ्रेंकोइस जेवियर कॉम्टे' (Isidore Auguste Marie Francois Xavier Comte) था। फ्रांसीसी भाषा में उनके नाम का उच्चारण 'ऑगस्ट कॉम्टे' होता है। कॉम्टे के पिता राजस्व कर विभाग में एक साधारण अधिकारी थे जहाँ उन्हें एक कट्टर निष्ठावान व्यक्ति के रूप में देखा जाता था। उनके परिवार की आर्थिक स्थिति औसत दर्जे की थी। अपने प्रारंभिक जीवन में, अपने माता-पिता के प्रभाव के कारण, कॉम्टे भी कैथोलिक धर्म की शिक्षाओं में विश्वास करते थे, लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने कैथोलिक धर्म की कट्टर प्रथाओं का विरोध करना शुरू कर दिया। कॉम्टे में बचपन से ही दो विशेषताएँ स्पष्ट हो गई थीं - पहली, उनमें तीव्र बौद्धिक क्षमता थी, और दूसरी, उन्हें उस समय की सामाजिक और राजनीतिक सत्ता में अधिक विश्वास नहीं था। अपनी प्रखर प्रतिभा के कारण, उन्हें बचपन से ही अनेक पुरस्कार मिलने लगे थे। कॉम्टे को यह पसंद नहीं था कि उन पर कोई विशेष विचार या सिद्धांत थोपा जाए। इन विशेषताओं के कारण उनके मित्र और सहकर्मी उन्हें दार्शनिक कहने लगे। कॉम्टे ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा अपने गृहनगर मोंटपेलियर में प्राप्त की। आगे की शिक्षा के लिए उन्हें पेरिस के एक पॉलिटेक्निक स्कूल में दाखिला दिलाया गया। वे वहाँ के कार्यक्रमों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने लगे और स्कूल के एक भ्रष्ट शिक्षक को निष्कासित करवाने में भी कॉम्टे ने सक्रिय योगदान दिया। इन गतिविधियों के कारण कॉम्टे न केवल अपने मित्रों के बीच लोकप्रिय हो गए बल्कि स्थानीय राजनेता भी उनकी प्रशंसा करने लगे। तेरह वर्ष की आयु में कॉम्टे ने अपने परिवार के राजनीतिक और धार्मिक विचारों को त्याग दिया और स्वतंत्र रूप से सोचने लगे। चौदह वर्ष की आयु में वे सामाजिक पुनर्निर्माण के बारे में सोचने लगे, जबकि सोलह वर्ष की आयु में कॉम्टे ने गणित पर कुछ ऐसे सारगर्भित व्याख्यान दिए कि उनकी लोकप्रियता तेजी से बढ़ने लगी। स्पष्ट है कि कॉम्टे ने बहुत कम उम्र से ही खुद को एक साहसी और स्वतंत्र विचारक के रूप में स्थापित करना शुरू कर दिया था।

अपनी पढ़ाई के दौरान, कॉम्टे प्रमुख फ्रांसीसी विचारक बेंजामिन फ्रैंकलिन (Benzamin Franklin)से भी काफ़ी प्रभावित हुए। कॉम्टे उन्हें आधुनिक सुकरात मानते थे और उनकी जीवन-शैली का अनुकरण करना चाहते थे। इस संबंध में, उन्होंने अपने स्कूल के एक मित्र को लिखा, "मैं आधुनिक सुकरात यानी बेंजामिन फ्रैंकलिन का अनुकरण करना चाहता हूँ, उनकी बौद्धिक क्षमता का नहीं, बल्कि उनकी ओवेन पद्धति का।"

कॉम्टे जब बीस वर्ष के थे, तब वे उस समय के प्रमुख विचारक और दार्शनिक संत साइमन के संपर्क में आए। उनका निकट संपर्क 1818 से 1824 तक रहा। संत साइमन की योग्यता और कार्यशैली से प्रभावित होकर वे उनके निजी सचिव बन गए। यही कारण है कि संत साइमन के अनेक विचार कॉम्टे की रचनाओं में परिवर्तित रूप में प्रकट होने लगे। इसके बाद भी कुछ विद्वानों का मानना है कि संत साइमन ने केवल उन्हीं विचारों को पुष्ट किया जो बीज रूप में कॉम्टे के मन में थे। इसे स्पष्ट करते हुए कोसर (Coser) ने लिखा है कि "यह कहना उचित होगा कि कॉम्टे संत

साइमन से बहुत अधिक प्रभावित थे और काफी हद तक उनके विचारों के आधार पर उन्हें आगे बढ़ाने में सफल रहे।"

कॉम्टे ने संत साइमन से दो मुख्य बातें सीखीं; पहली, विज्ञानों के बीच एक वस्तुपरक वर्गीकरण होना चाहिए और दूसरी, दर्शन का वास्तविक उद्देश्य सामाजिक वास्तविकताओं को उजागर करना होना चाहिए। इसी आधार पर कॉम्टे यह मानने लगे कि सामाजिक चिंतन का उद्देश्य नैतिक, धार्मिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं का पुनर्गठन करना है। इसके बावजूद कॉम्टे और संत साइमन के विचारों में स्पष्ट अंतर था। संत साइमन आत्म-साक्षात्कार के आदर्श पर अधिक बल देते थे, जबकि कॉम्टे ऐसी सामाजिक व्यवस्था के पक्षधर थे जिसमें मनुष्य सच्चरित्र, संयमी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाला बन सके। इसके साथ ही संत साइमन के विचारों में उतनी वैज्ञानिक और व्यवस्थित सोच नहीं थी जितनी कॉम्टे के विचारों में दिखाई देती है। संत साइमन एक समाजवादी विचारक थे और सामाजिक व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना चाहते थे। दूसरी ओर, कॉम्टे को इस दृष्टिकोण से विकासवादी कहा जा सकता है कि वे सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए क्रमिक परिवर्तन को अधिक महत्व देना चाहते थे। संत साइमन और कॉम्टे के बीच संबंधों में दरार 1824 में तब पड़ने लगी जब कॉम्टे ने संत साइमन के कुछ अनुयायियों पर संत साइमन के नाम पर कॉम्टे के विचारों का प्रचार करने का आरोप लगाया। इसी समय, कॉम्टे ने 'पॉज़िटिव फ़िज़िक' (Positive Physic) नाम से लिखे एक लेख के माध्यम से क्रांतिकारी और तीव्र परिवर्तन से जुड़े संत साइमन के विचारों की आलोचना भी शुरू कर दी। बाद में, कॉम्टे ने संत साइमन के बारे में यहाँ तक टिप्पणी करना शुरू कर दिया कि वे एक 'दुष्ट नीम हकीम' (depraved quack) हैं और उनके पास सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने का कोई वैज्ञानिक कार्यक्रम नहीं है।

कॉम्टे के जीवन का एक दुखद अध्याय 1835 में शुरू हुआ जब उन्होंने कैरोलीन मैसिन (Corolin Massin) से विवाह किया। पत्नी के झगड़ालू और आलोचनात्मक स्वभाव के कारण उनका पारिवारिक जीवन कष्टमय हो गया। इस दुःखद जीवन को भुलाने के लिए कॉम्टे ने अपना अधिकांश समय अध्ययन और लेखन में लगाना शुरू कर दिया। आर्थिक सहायता और प्रसिद्धि पाने के लिए उन्होंने 1826 से विभिन्न विषयों पर व्याख्यान देना शुरू किया। इन व्याख्यानों के दौरान कॉम्टे ने अपने प्रत्यक्षवाद (Positivism) की रूपरेखा भी प्रस्तुत की, जिसे आगे चलकर समाजशास्त्र में कॉम्टे के सबसे बड़े योगदान के रूप में देखा गया। अध्ययन, चिंतन और लेखन में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण 1827 में कॉम्टे एक गंभीर मानसिक रोग से ग्रस्त हो गए, लेकिन एक वर्ष बाद स्वस्थ होने पर उन्होंने पुनः व्याख्यान देना शुरू कर दिया। 1830 में उनकी महान कृति 'द कोर्स ऑफ पॉजिटिव फिलॉसफी' (The Course of Positive Philosophy) का पहला भाग प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक छह भागों में विभाजित है, जिसका अंतिम भाग 1842 में प्रकाशित हुआ। पारिवारिक संबंधों में लगातार तनाव के कारण 1842 में ही कॉम्टे और उनकी पत्नी का तलाक हो गया। तलाक के बाद कॉम्टे को एकांत जीवन पसन्द आने लगा था लेकिन फिर भी वे गंभीर चिंतन में लगे रहे। 1844 में कॉम्टे का सम्पर्क एक विचारशील महिला क्लॉटाइल डे वॉक्स (Clotile de Vaux) से हुआ। इस महिला की मित्रता के कारण उनके विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन आने लगे और कॉम्टे महिलाओं के सच्चे प्रशंसक बन गए। आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद, 1846 में डे वॉक्स की मृत्यु के साथ ही

कॉम्टे का सुखी जीवन समाप्त हो गया। यहीं से कॉम्टे ने स्वयं को मानवता के पुनर्निर्माण के लिए समर्पित कर दिया। मानवता के पुनर्निर्माण से संबंधित उनके विचार कॉम्टे की एक और महान कृति 'सिस्टम ऑफ पॉजिटिव पॉलिटी' 'System of Positive Polity' में स्पष्ट हुए, जो 1851 से 1854 के बीच चार भागों में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में कॉम्टे ने सामाजिक पुनर्निर्माण की एक अनूठी रूपरेखा प्रस्तुत की। सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना में कॉम्टे ने विज्ञान के स्थान पर आध्यात्मिक और नैतिक आदर्शों को अधिक महत्व दिया तथा सहिष्णुता और न्याय को सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक माना। मानवता के धर्म की स्थापना के लिए कॉम्टे ने परस्पर विरोधी मान्यताओं और व्यवहारों में समन्वय और एकीकरण पर बल देना शुरू किया। नारी को प्रेम का प्रतीक मानते हुए, सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना में उन्होंने नारी को नैतिक शक्ति के संचालन का प्रमुख माध्यम माना। स्पष्ट है कि इस पुस्तक में कॉम्टे द्वारा प्रस्तुत विचार, उनकी पूर्व लिखित पुस्तक 'पॉजिटिव फिलॉसफी' के विचारों से सर्वथा भिन्न थे। यही कारण है कि उनके अनुयायी जॉन स्टुअर्ट मिल और लिट्रे जैसे विद्वान उनकी इस पुस्तक को पढ़कर इतने दुःखी और निराश हुए कि वे इस पुस्तक को कॉम्टे के बौद्धिक जीवन का पतन मानने लगे।

एक प्रख्यात विचारक होने के बावजूद, कॉम्टे की आर्थिक स्थिति हमेशा दयनीय रही। उनके व्याख्यानों से मिलने वाला धन उनके लिए बहुत कम था। 'द कोर्स ऑफ़ पॉज़िटिव फिलॉसफी' (The Course of Positive Philosophy) पुस्तक के प्रकाशन के बाद, जब वे पॉलिटेक्निक स्कूल के परीक्षक भी बने, तब उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होने लगा। इसके बाद भी, उनके अनुयायी कभी-कभी उनके लिए चंदा इकट्ठा करके कॉम्टे की मदद करते थे। कॉम्टे ने स्वयं कभी ऐसी आर्थिक मदद लेने से इनकार नहीं किया। इसके विपरीत, उन्होंने शिकायत की कि उन्हें आर्थिक मदद के रूप में बहुत कम धन मिलता था। शायद यह उनके चरित्र की एक कमज़ोरी थी जिसके लिए कई लोगों ने कॉम्टे की कड़ी आलोचना की है।

वास्तविकता यह है कि कॉम्टे के लेखन और उनके चिंतन में एक असाधारण प्रतिभा झलकती है। अनेक बाधाओं का सामना करने के बावजूद, कॉम्टे अपने विचारों पर अडिग रहे और समाजशास्त्र जैसे नए विषय को विज्ञान का रूप देने के लिए निरंतर प्रयास करते रहे। उनकी लेखन शैली, असाधारण स्मरण शक्ति और परिपक्व विचारों के कारण, उनके प्रशंसकों की संख्या आलोचकों की तुलना में कहीं अधिक थी। कॉम्टे के कार्यों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने वाले धीरे-धीरे उनके प्रशंसक बन गए। 1857 में समाजशास्त्र के जनक कॉम्टे कैंसर से पीड़ित हो गए और 5 सितंबर 1857 को उनकी मृत्यु हो गई। कॉम्टे की मृत्यु के बाद भी, उनके विचारों ने उन्हें अमर बना दिया। उनके चिंतन की व्यापकता पर प्रकाश डालते हुए बार्न्स ने लिखा है, "सामाजिक सिद्धांत या सांस्कृतिक इतिहास के क्षेत्र में बहुत कम समस्याएँ हैं जिन पर कॉम्टे ने विचार न किया हो।" रेमंड एरन (Raymond Aron) ने समाजशास्त्र में कॉम्टे के योगदान की व्याख्या करते हुए लिखा है कि ऑगस्ट कॉम्टे को मानवीय और सामाजिक एकता स्थापित करने वाला पहला समाजशास्त्री कहा जा सकता है।"

1.4 कॉम्टे की रचनाएँ (Works of Comte)

कॉम्टे ने अपने संघर्षपूर्ण बौद्धिक जीवन में अनेक मौलिक रचनाएँ लिखीं। इन रचनाओं के माध्यम से उन्होंने न केवल समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में स्थापित किया, बल्कि सामाजिक चिंतन को एक नई दिशा भी दी। कॉम्टे की रचनाओं में निम्नलिखित रचनाएँ अधिक महत्वपूर्ण हैं:

(1) A Plan of the Scientific Operations Necessary for Reorga-nization of Society - यह 1822 में प्रकाशित कॉम्टे की पहली रचना है। इस पुस्तक में कॉम्टे ने सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए वैज्ञानिक योजनाएँ प्रस्तुत कीं और उन्हें व्यावहारिक रूप देने के लिए महत्वपूर्ण विचार भी प्रस्तुत किए। इस पुस्तक की उपयोगिता को देखते हुए संत साइमन जैसे प्रख्यात विचारक ने इसकी प्रस्तावना लिखने का दायित्व लिया। इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद कॉम्टे को यह अनुभव होने लगा कि सामाजिक प्रगति के लिए केवल सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि इसके लिए एक ऐसी सामाजिक नीति भी आवश्यक है जो अवलोकन और परीक्षण पर आधारित हो। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए कॉम्टे ने अपनी दूसरी पुस्तक लिखी।

(2) The Course of Positive Philosophy - कई वर्षों की कड़ी मेहनत के बाद, कॉम्टे की यह कृति 1830 से 1842 के बीच छह खंडों में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में, कॉम्टे ने समाजशास्त्र के लिए प्रत्यक्षवाद के रूप में एक नई पद्धति विकसित की। इसका उद्देश्य सामाजिक अध्ययन को और अधिक वैज्ञानिक बनाना था। इस पुस्तक में, उन्होंने चिंतन के तीन स्तरों का विस्तार से उल्लेख किया और विज्ञानों को इस प्रकार वर्गीकृत किया कि समाजशास्त्र की आवश्यकता और महत्त्व को समझा जा सके। यह पुस्तक मुख्यतः समाजशास्त्र के सैद्धांतिक आधार को समझाने का एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इसी कारण इसे कॉम्टे की कृतियों में सबसे उपयोगी और महत्वपूर्ण माना जाता है।

(3) System of Positive Polity - कॉम्टे द्वारा लिखित यह पुस्तक 1851 से 1854 के बीच चार खंडों में प्रकाशित हुई थी। यद्यपि कुछ विद्वान इस पुस्तक को कॉम्टे के परिपक्व विचारों का आधार मानते हैं, किन्तु इस पुस्तक के कारण कॉम्टे के विचारों की वैज्ञानिक प्रकृति पर भी संदेह होने लगा। इसका कारण यह है कि इस पुस्तक में कॉम्टे द्वारा प्रस्तुत विचारों के माध्यम से कॉम्टे ने सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए वैज्ञानिक आधार की अपेक्षा आध्यात्मिक एवं नैतिक आदर्शों को अधिक महत्वपूर्ण माना। इसकी आलोचना करते हुए उनके एक प्रमुख अनुयायी जॉन स्टुअर्ट मिल ने लिखा है कि इस पुस्तक में कॉम्टे ने स्वयं अपनी वैज्ञानिक सोच की निर्मम हत्या कर दी। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने कष्टपूर्ण पारिवारिक जीवन के पश्चात जब कॉम्टे श्रीमती डी वॉक्स के सम्पर्क में आए, तब उन्होंने मानवता के धर्म को सामाजिक पुनर्निर्माण का प्रमुख आधार मानना प्रारम्भ कर दिया। इसके बाद भी यह पुस्तक इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें कॉम्टे ने अपने सैद्धांतिक विचारों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया है।

(4) Catechism of Positivism- यह कॉम्टे की अंतिम रचना मानी जाती है, जो 1852 में प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में कॉम्टे ने एक ओर यूरोपीय समाज में पाई जाने वाली गतिशीलता का विश्लेषण करके लोकतंत्र का समर्थन किया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने सामाजिक प्रगति के लिए प्रेस और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को आवश्यक माना।

1.5 सारांश

इस इकाई में हमने समाजशास्त्र के संस्थापक ऑगस्ट कॉम्टे के जीवन और कार्यों को समझा। यहाँ हमने आपको ऑगस्ट कॉम्टे (1857-1978) के जीवन और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति से भी परिचित कराया है। वे समाजशास्त्र के संस्थापक हैं। उन्होंने इस विषय का नाम समाजशास्त्र रखा। इन विभिन्न कार्यों में कॉम्टे ने जिन प्रमुख विचारों और सिद्धांतों की व्याख्या की, आगे की चर्चा में हम उन्हीं कुछ प्रमुख विचारों और सिद्धांतों के विभिन्न पहलुओं की व्याख्या करेंगे।

1.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

बॉटमोर, टी.बी. (1978) सोशियोलॉजी, बम्बई, ब्लेकी एण्ड सनन।

कोजर, एल.ए. (1971) मास्टर्स ऑफ़ सोशियोलाजिकल थॉट, न्यूयार्क, हाकोर्ट ब्रास जोवानोविच।

पारसन्न, टालकट (1949) दि स्ट्रक्चर ऑफ़ सोशल एक्शन, न्यूयार्क, मैकग्राहिल।

टिमाशेफ, निकोलस एस. (1967) सोशियोलाजिकल टयूरी: इटस् नेचर एण्ड ग्रोथ, न्यूयार्क, रैंडम हाउस।

रेमन्ड, ऐरन (1966) मेन करन्टस इन सोशियोलाजिकल थॉट, वाल्यूम-1, लंदन, पेनग्यून बुक्स।

1.7 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

बोस, एन. के., 1967, कल्चर एण्ड सोसाइटी इन इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई।

दोषी व जैन, 2009, भारतीय समाज-संरचना एवं परिवर्तन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

मदान टी. एन. (संपा), 1991, रिलिजन इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

मजूमदार एम. टी., 1979, इंडियन रिलीजियस हेरीटेजः ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, एलाइड पब्लि० प्रा० लि०, नई दिल्ली।

1.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. ऑगस्ट कॉम्टे की जीवनी का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2. ऑगस्ट कॉम्टे की रचनाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई-2 चिंतन के तीन स्तरों का नियम

Law of Three Stagesof Thinking

इकाई की रुपरेखा

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 तीन स्तरों का नियम
2.2.1 धर्मशास्त्रीय अवस्था
2.2.2 तत्वमीमांसात्मक अवस्था
2.2.3 सकारात्मक या प्रत्यक्षवादी अवस्था
2.4 सारांश
2.5 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर
2.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.7 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.8 निबंधात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

कॉम्ट द्वारा प्रतिपादित यह नियम सामाजिक उद्विकास (Social Evolution) की प्रकृति को स्पष्ट करने से सम्बन्धित है। यह नियम कॉम्ट की उस मान्यता को स्पष्ट करता है जिसमें उनका कहना है कि समाज का विकास कुछ निश्चित नियमों के आधार पर ही होता है। कॉम्ट की बौद्धिक प्रतिभा इसी तथ्य से प्रमाणित हो जाती है कि उन्होंने इस नियम का प्रतिपादन अल्पायु में ही कर दिया था। तीन स्तरों के नियम की चर्चा करते हुए कॉम्ट ने बतलाया कि व्यक्ति के चिन्तन करने के तीन स्तर होते हैं अर्थात् विभिन्न समाजों अथवा विभिन्न कालों में व्यक्ति विभिन्न मानसिक अवस्थाओं से गुजरते हुए चिन्तन तथा विकास के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं। कॉम्ट ने बतलाया कि प्रत्येक समाज में अधिकांश व्यक्तियों का मस्तिष्क लगभग समान रूप से चिन्तन करता है, इसीलिए इस निश्चित काल में समाज को चिन्तन की किसी एक अवस्था के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

तीन स्तरों के नियम की चर्चा करते हुए कॉम्ट ने लिखा है कि "हमारे ज्ञान की प्रत्येक शाखा तीन विभिन्न सैद्धान्तिक अवस्थाओं से होकर गुजरती है जिन्हें हम आध्यात्मिक अवस्था अर्द्ध-तात्विक अवस्था एवं प्रत्यक्षवादी अवस्था कह सकते हैं।" कॉम्ट यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवन में कल्पना पर आधारित विश्व के महान सिद्धान्तों और वैज्ञानिक (प्रत्यक्षवादी) तरीकों से चिन्तन करता है। व्यक्तियों द्वारा किये जाने वाले चिन्तन के यह विभिन्न स्तर जब पूरे समूह के चिन्तन में बदल जाते हैं तब सम्पूर्ण समाज के चिन्तन की एक विशेष अवस्था का निर्धारण होता है। कॉम्ट द्वारा व्यक्त विचारों को सरल करते हुए अब्राहम एवं मॉर्गन ने लिखा है कि, "एक व्यक्ति अपने बचपन में अधिप्राकृतिक (Supernatural) शक्ति के प्रति अन्धविश्वास रखता है और साधारणतया उससे भयभीत भी रहता है। किशोरावस्था में वही व्यक्ति अन्धविश्वासों से मुक्त होकर विश्व के सिद्धान्तों के आधार पर चिन्तन करने लगता है है या सामाजिक मूल्यों और नैतिक मापदण्डों को स्वीकार करता है। वृद्धावस्था तक पहुंचते-पहुँचते वही व्यक्ति व्यावहारिक हो जाता है और प्रत्यक्षवादी अथवा वैज्ञानिक धरातल पर विचार करने लगता है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई में समाजशास्त्र के संस्थापक आगस्त काँत के मुख्य विचारों पर विचार-विमर्श किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके द्वारा सम्भव होगा।

1. आगस्त काँत द्वारा दिए गए तीन स्तरों का नियम को जान पाएंगे
2. काम्ट के मुख्य विचारों का विश्लेषण, तथा
3. समकालीन समाजशास्त्र में कौंत के विचारों का प्रभाव को बताना।

2.2 तीन स्तरों का नियम

आगस्त काँत ने सन् **1822** में जब वे सेंट साइमन के सचिव के रूप में कार्य कर रहे थे तब उन्होंने मानव के बौद्धिक विकास की क्रमबद्ध स्तरों की खोज की। उन्होंने अपने विश्लेषण में मानव की प्रारम्भिक आदिवासी अवस्था में, जिसमें मानव पूर्ण अविकसित रूप में था, यूरोप की सभ्यतावादी अवस्था तक सभी को रखा है। अपने इस अध्ययन में उन्होंने ऐतिहासिक, तुलनात्मक व वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके मानव के मस्तिष्क के विकास के नियमों या तीन अवस्थाओं के नियमों की स्थापना की।

कौन्त का मानना था कि जिस प्रकार मानव मस्तिष्क का विकास हुआ, उसी प्रकार व्यक्ति के मस्तिष्क का भी विकास हुआ अर्थात् व्यक्ति बचपन में अधि प्राकृतिक शक्तियों के प्रति अनेक प्रकार के अन्धविश्वासी स्तर से किशोर अवस्था में तात्विक आधार पर चिन्तन (जो अस्तित्व की अमूर्त धारणाओं को समझने की कोशिश करता

है) करने लगता है और फिर वयस्क होने पर दार्शनिक अवस्था में पहुँच जाता है, उसी प्रकार मानव की चिन्तन अवस्थाएं विकसित होती हैं और उनका यह विश्वास निम्न तीन चिन्तन धारा अवस्थाओं में हुआ है:

i) धर्मशास्त्रीय अवस्था (Theological Stage)

ii) तत्वमीमांसात्मक अवस्था (Metaphysical Stage)

iii) सकारात्मक या प्रत्यक्षवादी अवस्था (Positive Stage)

2.2.1 धर्मशास्त्रीय अवस्था (Theological Stage)

धर्मशास्त्रीय अवस्था में मानव मस्तिष्क प्रत्येक घटना को मानव के समतुल्य जीवों या शक्तियों में आरोपित करके उसकी व्याख्या करता है। इस अवस्था में मानव मस्तिष्क सभी प्रयत्नों और कार्यों का प्रारम्भिक और अन्तिम चरणों की खोज करने का प्रयत्न करता है और यह मानकर चलता है कि समस्त घटनायें आलौकिक शक्तियों द्वारा उत्पन्न और उन्हीं की तात्कालिक क्रियाओं का परिणाम होती है। इस अवस्था में व्यक्ति यह समझता है कि प्रत्येक घटना के पीछे दैविक या आलौकिक शक्ति काम कर रही हैं।

उदाहरणतः ग्रामीण व जनजातीय समाजों में यह माना जाता है कि फसल का नष्ट होना या कम पैदावार होना, वर्षा का कम होना या ना होना, परिवार के सदस्यों की अकाल मृत्यु होना, चेचक, हैजा जैसी बीमारियों से पीड़ित होना आदि घटनाओं को दैवकीय प्रकोपों का परिणाम माना जाता है।

इस अवस्था की भी तीन उप-अवस्थायें हैं। ये तीन उप-अवस्थायें इस प्रकार हैं:-

- <u>जीवित सत्तावाद (**Fetishism**)-</u> धर्मशास्त्रीय अवस्था की उप-अवस्थाओं की यह पहली चिन्तन की अवस्था है। इस अवस्था में मनुष्यों का यह विश्वास होता है कि प्रत्येक जड़ तथा चेतन वस्तु में जीवन होता है। पेड़-पौधों, नदियों, पहाड़ों तथा पत्थरों में भी किसी ना किसी अलौकिक शक्ति का अस्तित्व होने के कारण उसमें जीवन होता है-एक ऐसा जीवन जो मानवीय क्रियाओं पर अच्छा या बुरा प्रभाव डाल सकता है। यह आदिम मानव के चिन्तन का स्तर है, क्योंकि आदिम मानव एवं जनजातियाँ प्रत्येक पदार्थ में किसी न किसी आत्मा का निवास होने का विश्वास करते हैं।

- <u>बहु-देववाद (**Polytheism**) -</u> बहु देववाद उप अवस्थाओं की चिन्तन की दूसरी अवस्था है। इस अवस्था में मानव का चिन्तन अलौकिक विश्वासों से प्रभावित होने लगता है जिनका सम्बन्ध अनेक देवी-देवताओं से होता है। इस अवस्था में मनुष्य का मस्तिष्क तुलनात्मक रूप से अधिक संगठित हो जाता है तथा मानव की तर्क शक्ति बढ़ने

लगती है। फलस्वरूप व्यक्ति अधि-प्राकृतिक शक्तियों की प्रकृति और कार्यों के आधार पर उन्हें विभिन्न समूहों में विभाजित करके कुछ प्रमुख देवी-देवताओं की शक्ति में विश्वास करने लगता है। इस प्रकार बहु-देववाद धर्मशास्त्रीय अवस्था के चिन्तन का वह स्तर है जिसमें मानव सभी घटनाओं को विशेष देवी-देवताओं की प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता का परिणाम मानने लगता है।

- **एकेश्वरवाद (Monotheism)** - धर्मशास्त्रीय चिन्तन की उप-अवस्थाओं का यह अन्तिम स्तर है। इस अवस्था में मानव चिन्तन में कुछ अधिक स्पष्टता आ जाती है। इस स्तर में विभिन्न देवी-देवताओं में विश्वास समाप्त नहीं हो जाते, बल्कि अनेक देवताओं को भी एक सर्वशक्तिमान ईश्वर द्वारा ही संचालित और संगठित माना जाने लगता है। धर्मशास्त्रीय अवस्था के अन्तर्गत जीवित सत्तावाद, बहु-देववाद तथा एकेश्वरवाद जैसी तीनों उपअवस्थाओं का एक स्तर के बाद एक निश्चित क्रम में विकास होता है, यद्यपि मानव प्रत्येक घटना के कारण और परिणाम की व्याख्या किसी अलौकिक सत्तावाद के सन्दर्भ में ही करता है।

2.2.2 तत्वमीमांसात्मक अवस्था (Metaphysical Stage)

तत्वमीमांसक अवस्था में मस्तिष्क घटनाओं को प्रकृति समाज अमूर्त अस्तित्व के द्वारा व्याख्या करता है। ये अमूर्त अस्तित्व मानव द्वारा बनाये गये तत्व हैं। तत्वमीमांसक अवस्था धर्मशास्त्रीय अवस्था का ही संशोधित रूप है। इस स्तर में मस्तिष्क यह मानने लगता है कि अलौकिक शक्तियों की अपेक्षा कुछ अमूर्त शक्तियाँ ही वास्तविक सत्तावाद के रूप में सभी जीवों में विद्यमान रहती है अर्थात् गुणात्मक मानवीकरण तथा उनमें सभी तरह की घटनाओं को उत्पन्न करने की शक्ति होती है। इस प्रकार तत्वमीमांसक अवस्था के अन्तर्गत गुणात्मक मानवीकरण ;च्मतेवदपपिमक ्इेजतंबजपवदद्ध की दशा पर विशेष बल दिया। इसका तात्पर्य है कि तत्वमीमांसक अवस्था में व्यक्ति यह मानने लगता है कि ईश्वरीय सत्तावाद प्रत्येक जीव के अन्दर विद्यमान है तथा नैतिक और मानवीय गुणों को विकसित करना ही मानव जीवन का सबसे प्रमुख ध्येय है। वास्तव में तत्व ज्ञान एक विश्वास तथा रहस्यपूर्ण गुण है, जो अपनी प्रकृति से अमूर्त होते हुए भी मानवीय क्रियाओं को व्यापक रूप से प्रभावित करता है।

2.2.3 सकारात्मक या प्रत्यक्षवादी अवस्था (Positive Stage)

सकारात्मक अवस्था में मानव वैज्ञानिक ज्ञान या निरीक्षण, परीक्षण और प्रयोग की व्यवस्थित कार्यप्रणालियों द्वारा घटनाओं का विश्लेषण करते हैं। इस अवस्था में मनुष्य उपरोक्त दोनों अवस्थाओं के धार्मिक और काल्पनिक विचारों को त्यागकर केवल उन्हीं तथ्यों को यथार्थ मानता है कि जिन्हें प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। मानव के ज्ञान की

इस अवस्था को प्रत्यक्षवाद एवं वैज्ञानिक अवस्था भी कहा जाता है। इस प्रत्यक्षवादी एवं वैज्ञानिक अवस्था में मानव ने कल्पनात्मक चिन्तन के स्थान पर घटनाओं का वैज्ञानिक ढंग से अवलोकन करना आरम्भ कर दिया।

कौंत का विश्वास था कि मानव चिन्तन की प्रत्येक अवस्था का विकास निश्चित रूप से अपने से पूर्व की अवस्था से ही होता है। जब पूर्व की अवस्था पूरी हो जाती है तब नवीन अवस्था का उदय होता है। उन्होंने मानव चिन्तन की तीन अवस्थाओं में समाज में पाये जाने वाले सामाजिक व्यवस्थाओं के स्वरूपों तथा समाज में पाई जाने वाली सामाजिक इकाईयों के प्रभारों तथा भौतिक अवस्थाओं के साथ परस्पर सम्बन्ध दिखाये हैं। उनका मानना था कि सामाजिक जीवन का विकास उसी तरह होता है जिस तरह मानवों के सोचने व समझने के तरीकों में क्रमबद्ध परिवर्तन आते हैं। कौंत के अनुसार जब क्रान्तिक काल आता है तो प्राचीन परम्परायें, व्यवस्थायें, संस्थायें असंतुलित हो जाती हैं, जिससे बौद्धिक सामंजस्य समाप्त हो जाता है और समाज में असंतुलन आ जाता है। कौंत के अनुसार फ्रांसीसी समाज इसी क्रान्तिक काल से गुजर रहा था।

मानव के इतिहास में मानव चिंतन की धर्मशास्त्रीय अवस्था में धर्म का राजनीति पर प्रभुत्व रहता है और शासन सैनिकों द्वारा चलाया जाता है। तत्वमीमांसक अवस्था में चर्च के पादरियों तथा वकीलों का प्रभुत्व रहता है। यह अवस्था लगभग मध्यकाल और पुर्नजागरण आन्दोलन के समकक्ष थी। सकारात्मक अवस्था में जिसका उदय पूर्व की दोनों अवस्थाओं के बाद हो रहा था। इसमें औद्योगिक प्रशासकों तथा वैज्ञानिक मार्गदर्शकों का प्रभुत्व होगा। धर्मशास्त्रीय अवस्था में सामाजिक इकाई के रूप में परिवार एक महत्वपूर्ण इकाई था। तत्वमीमांसक अवस्था में राज्य एक महत्वपूर्ण इकाई था तथा सकारात्मक अवस्था में सम्पूर्ण मानव जाति ही सामाजिक इकाई होगी।

तीन अवस्थाओं के नियम विज्ञानों के संस्तरण के साथ भी जुड़ा हुआ है। जिस तरह मानव की चिंतनधाराओं का विकास होता है उसी तरह विभिन्न विज्ञान संस्तरण में स्थापित होते जाते हैं। समाजशास्त्र के अलावा सभी विज्ञान सकारात्मक अथवा विकास के स्तर तक पहुँच चुके हैं लेकिन समाजशास्त्र के विकास के साथ ही यह प्रक्रिया पूरी हो जायेगी।

बोध प्रश्न-1

1. निम्नलिखित में से कौन-सा समाज कौंत द्वारा प्रस्तुत धर्मशास्त्रीय अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है?

(अ) औद्योगिक समाज (ब) सैनिक समाज

(स) आदिम समाज (स) परम्परागत समाज

2. धर्मशास्त्रीय अवस्था में राजनीति पर किसका प्रभुत्व रहता है?

(अ) नैतिकता (ब) कानून

(स) धर्म (स) संस्कृति

3. तत्वमीमांसात्मक अवस्था में महत्वपूर्ण इकाई के रूप में क्या था**?**

(अ) राज्य (ब) परिवार

(स) मानव जाति (स) फौजी शासक

4. मानव मस्तिष्क घटनाओं को प्रकृति समान अमूर्त अस्तित्व के माध्यम से विवेचत करता है।

(अ) धर्मशास्त्रीय अवस्था (ब) तत्वमीमांसक अवस्था

(स) वैज्ञानिक अवस्था (स) सकारात्मक

2.4 सारांश

कॉम्ट ने चिन्तन के जिन विभिन्न स्तरों को स्पष्ट किया वे व्यक्ति को बौद्धिकता, क्रियात्मकता और भावनात्मक धरातल पर प्रभावित करते हैं। कॉम्ट के मतानुसार जब समाज में चिन्तन का स्तर ईश्वरवादी होता है तब व्यक्ति बौद्धिक धरातल पर अधि-प्राकृतिक विश्वासों से प्रभावित होता है। इस अवस्था में समाज में सैनिक सत्ता पायी जाती है और व्यक्तियों के मध्य अहम्वादिता की बढ़ी हुई प्रवृत्ति देखने को मिलती है। अन्तिम अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते समाज में वैज्ञानिक चिन्तन उत्पन्न हो जाता है और समाजों का स्वरूप सैनिक सत्ता या राजशाही से अलग होकर औद्योगिक समाजों के रूप में परिवर्तित होने लगता है। इस प्रकार कॉम्ट ने चिन्तन के स्तरों का उल्लेख केवल बौद्धिक धरातल पर ही नहीं किया है। बल्कि इस सिद्धान्त के द्वारा उन्होंने समाज के स्वरूप और व्यक्तियों के मध्य पाये जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों की विवेचना भी की है।

2.5 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. ब- सैनिक समाज
2. स- धर्म
3. अ- राज्य
4. ब- तत्वमीमांसक अवस्था

2.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

बॉटमोर, टी.बी. (1978) सोशियोलॉजी, बम्बई, ब्लेकी एण्ड सनन।

कोजर, एल.ए. (1971) मास्टर्स ऑफ़ सोशियोलाजिकल थॉट, न्यूयार्क, हाकोर्ट ब्रास जोवानोविच।

पारसन्न, टालकट (1949) दि स्ट्रक्चर ऑफ़ सोशल एक्शन, न्यूयार्क, मैकग्राहिल।

टिमाशेफ, निकोलस एस. (1967) सोशियोलाजिकल टयूरी: इटस् नेचर एण्ड ग्रोथ, न्यूयार्क, रैंडम हाउस।

रेमन्ड, ऐरन (1966) मेन करन्टस इन सोशियोलाजिकल थॉट, वाल्यूम-1, लंदन, पेनग्यून बुक्स।

2.7 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

बोस, एन.के ., 1967, कल्चर एण्ड सोसाइटी इन इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई।

दोषी व जैन, 2009, भारतीय समाजसंरचना एवं परिवर्तन-, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

मदान टी(संपा) .एन ., 1991, रिलिजन इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

मजूमदार एम.टी ., 1979, इंडियन रिलीजियस हेरीटेजः ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, एलाइड पब्लि० प्रा० लि०, नई दिल्ली।

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. कौंत द्वारा प्रतिपादित तीन अवस्थाओं के नियम की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।
2. धर्मशास्त्रीय अवस्था पर कौंत के विचारों की व्याख्या कीजिये।

इकाई -3

विज्ञानों का संस्तरण (Hierarchy of sciences)

इकाई रूपरेखा

3.0 परिचय

3.1 उद्देश्य

3.2 विज्ञानों के संस्तरण

3.3 संस्तरण के आधार या सिद्धान्त

3.3.1 बढ़ती निर्भरता के क्रम का सिद्धांत

3.3.2 घटती व्यापकता और बढ़ती जटिलता का सिद्धांत

3.4 सारांश

3.5 ग्रंथ सूची

3.6 उपयोगी पठन सामग्री

3.7 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

अपने नए सामाजिक विज्ञान 'समाजशास्त्र' की नींव रखते हुए कॉम्टे ने मानवीय चिंतन के तीन स्तरों - आध्यात्मिक, दार्शनिक और प्रत्यक्षवादी स्तरों का उल्लेख किया है और अपने सामाजिक विज्ञान के लिए एक वैज्ञानिक कार्य प्रणाली अर्थात् 'प्रत्यक्षवाद' भी प्रस्तुत की है। लेकिन वे केवल इतने से ही संतुष्ट नहीं थे। एक सच्चे 'पिता' की तरह, वे अपने 'मानसिक पुत्र' समाजशास्त्र को भी विज्ञान जगत में सुस्थापित देखना चाहते थे। समाजशास्त्र के लिए इस वैज्ञानिक स्थिति को सुनिश्चित करने हेतु, कॉम्टे ने 'तीन स्तरों के नियम' और 'प्रत्यक्षवाद' के बाद विज्ञानों के स्तरीकरण या वर्गीकरण के रूप में तीसरा आधार तैयार किया। प्रोफ़ेसर बोगार्डस ने भी लिखा है कि, "कॉम्टे की योजना का तीसरा चरण विज्ञानों का वर्गीकरण था, जिसके अंतर्गत समाजशास्त्र को नवीनतम किन्तु सर्वोत्तम विज्ञान के रूप में प्रदर्शित किया गया।"

3.1 उद्देश्य

यह इकाई समाजशास्त्र के संस्थापक ऑगस्ट कांट के मुख्य विचारों पर चर्चा करती है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आप सक्षम होंगे:

1. विज्ञानों के संस्तरण को जानें।

2. संस्तरण के आधार या सिद्धान्त को समझें।

3.2 विज्ञानों के संस्तरण

कॉम्टे को विज्ञानों के वर्गीकरण का विचार संत साइमन से मिला। हालाँकि वे संत साइमन से इस बात पर सहमत थे कि विज्ञानों का वर्गीकरण वैज्ञानिक तरीके से किया जाना चाहिए, लेकिन वे संत साइमन के वर्गीकरण से सहमत नहीं थे। उनका दावा था कि वे संत साइमन की तुलना में विज्ञानों का वर्गीकरण या स्तरीकरण अधिक वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत कर सकते हैं। उन्होंने अपनी कृति 'पॉजिटिव फिलॉसफी' में इन आधारों का उल्लेख किया है। इस पुस्तक को लिखने का कॉम्टे का एक उद्देश्य अपने नए विज्ञान 'समाजशास्त्र' के लिए एक सुदृढ़ और वैज्ञानिक आधार खोजना था ताकि समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र और अन्य प्राकृतिक विज्ञानों के साथ उसका संबंध स्पष्ट हो सके।

3.3 संस्तरण के आधार या सिद्धान्त (Two Basis or Principles of Hierarchy)

उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए कॉम्टे ने उतार-चढ़ाव के आधार पर विज्ञानों का एक नया वर्गीकरण या स्तरीकरण प्रस्तुत किया और इसके लिए उन्होंने दो आधार या सिद्धांत निर्धारित किए। वे हैं-

1. बढ़ती निर्भरता का सिद्धांत और

2. घटती व्यापकता और बढ़ती जटिलता का सिद्धांत।

अब हम इन दो सिद्धांतों या आधारों पर चर्चा करेंगे-

3.3.1 बढ़ती निर्भरता के क्रम का सिद्धांत (The Principle of the order of increasing dependence)-

विज्ञानों का वर्गीकरण-विज्ञानों के वर्गीकरण या स्तरीकरण को प्रस्तुत करने के लिए कॉम्टे ने बढ़ती निर्भरता के सिद्धांत को चुना। दूसरे शब्दों में, कॉम्टे के विचार के अनुसार, ज्ञान या विज्ञान की प्रत्येक शाखा पिछली शाखा या विज्ञान द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों पर निर्भर होती है। इस निर्भरता का परिणाम यह होता है कि जैसे-जैसे हम ज्ञान या विज्ञान की एक शाखा से दूसरी शाखा की ओर बढ़ते हैं, उस शाखा की निर्भरता बढ़ती जाती है। इस सिद्धांत के अनुसार, पहला विज्ञान किसी पर निर्भर नहीं है; इसके बाद विकसित होने वाला दूसरा विज्ञान पहले विज्ञान पर निर्भर होगा; तीसरा विज्ञान पहले और दूसरे विज्ञान पर निर्भर होगा; अगला विज्ञान पहले, दूसरे और तीसरे विज्ञान पर निर्भर करेगा और इस क्रम में विज्ञान की प्रत्येक शाखा की निर्भरता बढ़ती जाएगी। इसलिए, कॉम्टे के विज्ञानों के वर्गीकरण के सिद्धांत को 'आश्रयता के बढ़ते क्रम का सिद्धांत' कहा गया है। आगे की चर्चा से यह सिद्धांत और भी स्पष्ट हो जाएगा।

3.3.2 घटती व्यापकता और बढ़ती जटिलता का सिद्धांत (The Principle of decreasing Generality and increasing Complexity) –

कॉम्टे के अनुसार, विज्ञानों का विकास एक विशिष्ट क्रम में होता है और वह क्रम है 'घटती व्यापकता और बढ़ती जटिलता'। दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे किसी नए विज्ञान का जन्म होता है, उस विज्ञान के अध्ययन का विषय धीरे-धीरे कम सामान्य और अधिक जटिल होता जाता है। कॉम्टे के विज्ञान वर्गीकरण सिद्धांत के अनुसार, किसी विज्ञान के अध्ययन के विषय का प्रकार ही अन्य विज्ञानों पर उसकी निर्भरता और विज्ञानों के पदानुक्रम में उसका स्थान निर्धारित करता है। अध्ययन का विषय जितना अधिक विशिष्ट और जटिल होगा, उस विज्ञान की अपने पूर्ववर्ती विज्ञान या विज्ञानों पर निर्भरता या निर्भरता उतनी ही अधिक होगी। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि सरल और सामान्य घटनाएँ पहले आती हैं और उनका अध्ययन करना भी आसान होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रथम विज्ञान वह है जो सबसे सरल विषयों या घटनाओं का अध्ययन करता है और जो घटना सबसे सरल होती है वह सबसे सामान्य भी होती है - सामान्य इस अर्थ में कि वह सर्वत्र विद्यमान होती है। इस प्रकार प्रथम विज्ञान सबसे सामान्य और सबसे कम जटिल घटनाओं या विषयों से संबंधित होता है। इस प्रथम विज्ञान के बाद विकसित हुए अन्य विज्ञानों के अध्ययन-विषय धीरे-धीरे कम सामान्य और अधिक जटिल होते गए। इस प्रकार दूसरा विज्ञान, पहले विज्ञान की अपेक्षा अधिक जटिल विषय-वस्तु से तथा तीसरा विज्ञान, दूसरे विज्ञान की अपेक्षा कम सामान्य तथा अधिक जटिल विषय-वस्तु से संबंधित होता है। यह क्रम चलता रहता है। विज्ञानों के विकास के इस क्रम में, चूँकि प्रत्येक विज्ञान का अध्ययन-विषय क्रमशः जटिल होता जाता है, अतः प्रत्येक विज्ञान अपने पूर्ववर्ती विज्ञान या विज्ञानों की खोजों, निष्कर्षों और सिद्धांतों पर क्रमशः अधिक निर्भर होता जाता है, अर्थात् उसकी निर्भरता क्रमशः बढ़ती जाती है। इस प्रकार प्रत्येक विज्ञान, अपने पूर्ववर्ती विज्ञान या विज्ञानों पर आधारित होने के कारण, अगले विज्ञान के लिए आधार प्रदान करता है। इसके अलावा, कॉम्टे के अनुसार, प्रत्येक विज्ञान न केवल अपने पूर्ववर्ती विज्ञान या विज्ञानों पर निर्भर होता है, बल्कि वह अपनी खोजों से पूर्ववर्ती विज्ञान या विज्ञानों का पोषण भी करता रहता है।

अपने उपर्युक्त सिद्धांत के आधार पर शाकोमट द्वारा प्रस्तुत विज्ञानों का पदानुक्रम इस प्रकार है-

(1) गणितशास्त्र (Mathematics)

(2) खगोलशास्त्र (Astronomy)

(3) भौतिकशास्त्र (Physics)

(4) रसायनशास्त्र (Chemistry)

(5) प्राणिशास्त्र (Biology)

(6) समाजशास्त्र (Sociology)

विज्ञान की संस्था में गणित का प्रथम स्थान है। इसका कारण यह है कि श्री कॉम्टे के अनुसार गणित सबसे प्राचीन, पवित्र और दोषरहित विज्ञान है। गणित सबसे शक्तिशाली उपकरण है जिसके प्रयोग में प्राकृतिक क्षमता की कमी का सिद्धांत निहित है। इस अर्थ में यह मानव चिंतन का सबसे आधारभूत उपकरण है। अनुसंधान के क्षेत्र में, चाहे वह सामाजिक हो या प्राकृतिक, गणित से अतुलनीय कोई विज्ञान नहीं है क्योंकि वास्तविकता का वास्तविक नाम या विभिन्न सिद्धांतों के सिद्धांतों का निश्चित ज्ञान गणित की सहायता से ही संभव है। कोई भी अन्य विज्ञान अपने वैज्ञानिक या अनुसंधान कार्य में तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक वह गणित की सहायता न ले, क्योंकि यही सभी विज्ञानों का आधार या नींव है। अन्य सभी विज्ञान इसी नींव पर आधारित हैं और स्वयं को विज्ञान कहलाने के योग्य हैं। इसलिए श्री कॉम्टे विज्ञान की संस्था में गणित को प्रथम और पवित्र स्थान देते हैं।

विज्ञान के पदानुक्रम में अन्य विज्ञानों का स्थान निर्धारित करने के लिए, श्री कॉम्टे ने सभी प्राकृतिक घटनाओं (Natural phenomena) को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया है - अजीवज (Inorganic) और जीवज (Organic)।

अजीवज (Inorganic) घटनाओं को हम दो उप-भागों में विभाजित कर सकते हैं- खगोलीय और पार्थिव। खगोलीय घटनाएँ बहुत सामान्य होती हैं। ग्रहों और नक्षत्रों आदि में बहुत कम परिवर्तन होता है। खगोल विज्ञान इन घटनाओं से संबंधित है। ग्रह, उपग्रह, तारे, धूमकेतु, उल्कापिंड आदि खगोल विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में आते हैं। सूर्य एक नक्षत्र है और बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून और कुबेर ग्रह हैं और चंद्रमा हमारी पृथ्वी का एक उपग्रह है। ये विभिन्न नक्षत्र, ग्रह और उपग्रह एक दूसरे से कितनी दूरी पर स्थित हैं? ये परस्पर आकर्षण द्वारा एक दूसरे से किस प्रकार जुड़े हुए हैं? इनका आधार क्या है? 'नक्षत्र परिवार' क्या है? (उदाहरण के लिए, सूर्य के परिवार या 'सौर परिवार' में पृथ्वी, चंद्रमा, मंगल, बुध जैसे अनेक ग्रह और उनके उपग्रह शामिल हैं),

उनकी गति आदि का अध्ययन खगोल विज्ञान द्वारा किया जाता है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि ऐसे अध्ययन का क्या महत्व है? अथवा पृथ्वी पर मनुष्यों के लिए खगोल विज्ञान या आकाशीय घटनाओं के बारे में जानने का क्या महत्व है? इसका उत्तर बहुत सरल है। जब तक हम पृथ्वी की प्रकृति और अन्य ग्रहों व तारों के साथ उसके संबंध को नहीं समझेंगे, तब तक हम अपनी पृथ्वी से जुड़ी घटनाओं के बारे में कुछ नहीं जान सकते। यह ज्ञान हमें खगोल विज्ञान से मिलता है।

स्थलीय भौतिकशास्त्र (Terrestrial Physics) में दो विज्ञान सम्मिलित हैं - भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान। भौतिक पदार्थों के बारे में जानने के लिए उनका भौतिक या रासायनिक विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। इस कार्य के लिए दो पृथक विज्ञान हैं - भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान। भौतिक विज्ञान के अध्ययन का विषय, रसायन विज्ञान के अध्ययन के विषय से अधिक सामान्य है। यह तत्वों की अपेक्षा पदार्थों से अधिक संबंधित है। रासायनिक तत्व भौतिक विज्ञान के नियमों पर निर्भर करते हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि रासायनिक घटनाएँ भी भौतिक विज्ञान के नियमों से प्रभावित होती हैं। कोई भी रासायनिक अभिक्रिया भार, ऊष्मा और विद्युत के नियमों से प्रभावित होकर खगोल विज्ञान, भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान के माध्यम से होती है।

जीवज घटना (Organic Phenomena) दो प्रकार की होती हैं - वैयक्तिक और समष्टिगत। प्रथम में पादप और प्राणी जगत के सभी वैयक्तिक या भौतिक रूपों की क्रियाएँ और संरचनाएँ सम्मिलित हैं। यही जीव विज्ञान के अध्ययन का विषय है। इसमें सम्पूर्ण जीवन और उससे संबंधित नियमों का अध्ययन सम्मिलित है। स्पष्ट है कि प्राणिशास्त्र रसायन विज्ञान पर निर्भर है क्योंकि पोषण और ग्रंथियों से रस स्राव के सभी विश्वसनीय नियम हमें रसायन विज्ञान से ही प्राप्त होते हैं। इतना ही नहीं, प्राणिशास्त्र भौतिकी से भी संबंधित है क्योंकि भौतिकी ही प्राणिशास्त्र को जीवों के भार, तापमान और अन्य संबंधित तथ्यों का ज्ञान देती है। खगोल विज्ञान के नियम भी प्राणिशास्त्र के नियमों को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि पृथ्वी की गति उसकी वर्तमान गति से बढ़ जाती है, तो परिणाम यह होता है कि शारीरिक घटनाओं की गति भी निश्चित रूप से बढ़ जाएगी और जीवन की अवधि घट जाएगी। खगोल विज्ञान हमें यह भी बताता है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर लट्टू की तरह घूमती है और लगभग 24 घंटे में एक चक्कर पूरा करती है। इस दैनिक गति के कारण पृथ्वी का आधा भाग बारी-बारी से सूर्य के सामने आता है और दिन-रात होते हैं।

इसी प्रकार, पृथ्वी एक अण्डाकार कक्षा में घूमती है और सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है जिसे वार्षिक गति या परिक्रमण कहते हैं। ऋतुओं के परिवर्तन में इस वार्षिक गति की भूमिका होती है। यदि पृथ्वी पर वार्षिक गति न होती, तो वर्ष भर ऋतुएँ एक समान रहतीं। पृथ्वी अपनी पूरी धुरी पर घूमती है: पृथ्वी की यह धुरी कक्षा तल के

लंबवत न होकर 66% का कोण बनाती है। यदि पृथ्वी की यह धुरी कक्षा तल के लंबवत हो जाए, तो परिणाम यह होगा कि दिन और रात सर्वत्र बराबर हो जाएँगे; साथ ही ऋतुओं में कोई परिवर्तन नहीं होगा, अर्थात वर्ष भर सभी जगह मौसम एक जैसा रहेगा। धुरी के झुकाव के कारण, दोपहर के समय सूर्य की ऊँचाई अलग-अलग स्थानों पर भिन्न होती है, दिन और रात लंबे और छोटे होते रहते हैं, ऋतुएँ बदलती रहती हैं, उत्तरी और दक्षिणी गोलार्ध में ऋतुएँ एक-दूसरे से भिन्न होती हैं और उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों पर दिन और रात छह-छह महीने के होते हैं। इन सबका शारीरिक घटनाओं पर प्रभाव पड़ता है। अतः स्पष्ट है कि प्राणिशास्त्र भी खगोल विज्ञान का ऋणी है। इसके अतिरिक्त, प्राणिशास्त्रीय अध्ययनों में जो सटीकता पाई जाती है, वह गणित के कारण ही है। यदि प्राणिशास्त्र को अपने अध्ययन कार्य में गणित का सहयोग न मिलता, तो वह वस्तुतः त्रुटिपूर्ण, अनिश्चित एवं अविश्वसनीय होता। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि विज्ञानों के पदानुक्रम में आने से पहले प्राणिशास्त्र सभी विज्ञानों पर निर्भर है।

जीवज घटनाओं (Organic phenomena) का दूसरा प्रकार या भाग समूह है। इस भाग का अध्ययन समाजशास्त्र के बारे में है, जो कि श्री कॉम्ट द्वारा प्रस्तुत विज्ञानों के शास्त्रों में सबसे अधिक पराश्रित (Dependent) विज्ञान माना जाता है, जिसके अनुसार अपने अध्ययन कार्य में गणितशास्त्र, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र और प्राणशास्त्र सभी पर स्वीकृत हैं। ये सभी विज्ञान एक ही क्रम से एक-दूसरे पर या अपने-अपने पहले वाले विज्ञान या विज्ञान पर निर्भर हैं, जिस क्रम से उनका विकास हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्री कॉम्टे ने ज्ञान या विज्ञानों के पदानुक्रम को निर्भरता-वृद्धि क्रम के सिद्धांत के आधार पर प्रस्तुत किया है। गणित को सबसे आधारभूत स्थान दिया गया है क्योंकि यह सबसे सामान्य और प्राचीन विज्ञान है। इसके ऊपर खगोल विज्ञान है, जो मूलतः अपने पूर्ववर्ती विज्ञान गणित पर निर्भर है। इसके ऊपर दो विज्ञान हैं, भौतिकी और रसायन विज्ञान, जो पार्थिव घटनाओं का अध्ययन करते हैं। भौतिकी खगोल विज्ञान और गणित पर निर्भर है, जबकि रसायन विज्ञान को अपने अध्ययन कार्य में भौतिकी, खगोल विज्ञान और गणित पर निर्भर रहना पड़ता है। इसके बाद प्राणि विज्ञान है, जो शरीर और जीवन संबंधी विषयों का अध्ययन करता है, जो रसायन विज्ञान, भौतिकी, खगोल विज्ञान और गणित पर निर्भर है। सामाजिक भौतिकी या समाजशास्त्र, जो इन विज्ञानों पर आधारित है और सामूहिक या सामाजिक तथ्यों और घटनाओं का अध्ययन करता है, को सबसे ऊपर रखा गया है। इस संबंध में, यह उल्लेखनीय है कि 'प्रत्यक्षवादी धर्म' या 'मानवता के धर्म' के सिद्धांत को विकसित करते समय, उपर्युक्त छह विज्ञानों के अलावा, श्री कॉम्टे ने एक सातवें और सबसे महत्वपूर्ण विज्ञान, नीतिशास्त्र का भी उल्लेख किया है। लेकिन उनके कार्यों में इस अंतिम विज्ञान का कोई विशेष उल्लेख या व्याख्या नहीं मिलती। इसी कारण, श्री कॉम्टे द्वारा प्रस्तुत ज्ञान या विज्ञानों के वर्गीकरण में, केवल ये छह विज्ञान, गणित, खगोल विज्ञान, भौतिकी, रसायन विज्ञान, प्राणि विज्ञान और समाजशास्त्र, ही सामान्यतः सम्मिलित हैं और यह उचित भी है। इस वर्गीकरण को प्रस्तुत करने का एक मुख्य उद्देश्य विभिन्न विज्ञानों की सापेक्ष पूर्णता या सटीकता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करना

है। श्री कॉस्ट ने स्वयं लिखा है कि, "यह वर्गीकरण वास्तव में विभिन्न विज्ञानों की सापेक्ष पूर्णता को दर्शाता है; किसी विज्ञान की सापेक्ष पूर्णता सटीक ज्ञान की मात्रा और विभिन्न शाखाओं के साथ उसके संबंध पर निर्भर करती है। यह आसानी से देखा जा सकता है कि घटनाएँ जितनी अधिक सामान्य, सरल और अमूर्त होती हैं, वे दूसरों पर उतनी ही कम निर्भर होती हैं और उनकी मध्यस्थता या सटीकता उतनी ही अधिक होती है और अन्य विज्ञानों के साथ उनका संबंध उतना ही अधिक स्पष्ट होता है। इस प्रकार, जैविक घटनाएँ अजैविक घटनाओं की तुलना में कम सटीक और नियमबद्ध होती हैं और इनमें से, स्थलीय घटनाएँ खगोलीय घटनाओं की तुलना में कम सटीक और नियमबद्ध होती हैं। यह तथ्य हमारे द्वारा प्रस्तुत विज्ञानों के स्तरीकरण से पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है।"

3.4 सारांश

कॉम्टे का मत है कि हम किसी भी विज्ञान के बारे में तब तक समुचित ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते जब तक हम उससे पहले के विज्ञान या उन विज्ञानों के बारे में ज्ञान प्राप्त न कर लें जिन पर वह विज्ञान निर्भर है। उदाहरण के लिए, हम समाजशास्त्र की सहायता से मानव समाज या सामाजिक घटनाओं के बारे में समुचित ज्ञान तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हमें उससे पहले के विज्ञानों जैसे प्राणिशास्त्र, रसायनशास्त्र, भौतिकी और गणित के बारे में कुछ सामान्य ज्ञान हो। सीधी सी बात है कि जब तक हम प्राणिशास्त्र की सहायता से जीवों और जीवन तथा उनसे संबंधित नियमों के बारे में ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक हमारे लिए मानव सामाजिक जीवन की घटनाओं को समझना कैसे संभव होगा? अतः श्री कॉम्टे के अनुसार प्रत्येक विज्ञान का अध्ययन उसी क्रम में किया जाना चाहिए जैसा कि उपरोक्त वर्गीकरण में प्रस्तुत किया गया है। इस पदानुक्रम में सबसे ऊपर समाजशास्त्र है जो अन्य विज्ञानों की तुलना में सबसे नया, सबसे अधिक निर्भर, विशिष्ट और जटिल विज्ञान है। अब हम इस विज्ञान 'समाजशास्त्र' के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

3.5 संदर्भ ग्रन्थ सूची

बॉटमोर, टी.बी. (1978) सोशियोलॉजी, बम्बई, ब्लेकी एण्ड सनन।

कोजर, एल.ए. (1971) मास्टर्स ऑफ़ सोशियोलाजिकल थॉट, न्यूयार्क, हाकोर्ट ब्रास जोवानोविच।

पारसन्न, टालकट (1949) दि स्ट्रक्चर ऑफ़ सोशल एक्शन, न्यूयार्क, मैकग्राहिल।

टिमाशेफ, निकोलस एस. (1967) सोशियोलाजिकल टयूरी: इटस् नेचर एण्ड ग्रोथ, न्यूयार्क, रैंडम हाउस।

रेमन्ड, ऐरन (1966) मेन करन्टस इन सोशियोलाजिकल थॉट, वाल्यूम-1, लंदन, पेनग्यून बुक्स।

3.6 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

बोस, एन.के ., 1967, कल्चर एण्ड सोसाइटी इन इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई।

दोषी व जैन, 2009, भारतीय समाजसंरचना एवं परिवर्तन-, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

मदान टी(संपा) .एन ., 1991, रिलिजन इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

मजूमदार एम.टी ., 1979, इंडियन रिलीजियस हेरीटेजः ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, एलाइड पब्लि० प्रा० लि०, नई दिल्ली।

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ऑगस्ट कॉम्टे का नया विज्ञान क्या है? इसका संक्षेप में वर्णन कीजिए।

2. ऑगस्ट कॉम्टे के विज्ञान के स्तरीकरण का वर्णन कीजिए।

इकाई - 4

प्रत्यक्षवाद (Positivism)

इकाई रुपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रत्यक्षवाद का अर्थ

4.3 ऑगस्ट कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद

4.4 प्रत्यक्षवाद की मान्यताएँ या विशेषताएँ

4.5 सारांश

4.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.7 उपयोगी पठन सामग्री

4.8 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रत्यक्षवाद वह सिद्धांत है जिसे फ्रांसीसी दार्शनिक ऑगस्ट कॉम्टे द्वारा स्थापित किया गया एवं वह सामान्य दार्शनिक दृष्टिकोण है जिसे बेकन, लॉक, न्यूटन, और दूसरे समकालीन चिन्तकों जैसे कि मोरित्ज, अर्नेस्ट मैक, रूडोल्फ कार्नप और अन्यों, जिनका मानना था कि वास्तविक ज्ञान केवल अवलोकन से शुरू होकर परीक्षण से विकसित होता है। सामाजिक विज्ञान में प्रत्यक्षवाद तीन मान्यताओं द्वारा अभिकल्पित है- पहला ज्ञान का आधार अनुभव होना चाहिए, दूसरा , यह धारणा कि प्राकृतिक विज्ञानों की विधियां सीधे सामजिक विज्ञानों में लागू होने योग्य होती हैं और इसके द्वारा सामाजिक परिघटना सम्बंधित नियमों को प्राप्त किया जा सकता है. तीसरा , यह सिद्धांत कि नियामक/नैतिक कथन निरर्थक होते हैं और यह मान्यता कि तथ्य तथा मूल्य पूर्णतः एक दूसरे से पृथक हैं। कॉम्टं मानते हैं कि वैज्ञानिक सिद्धांतों का कार्य प्रेक्षित तथ्यों का संयोजन करना है, न कि उन्हें कारण रूप में

व्याख्यायित करना है और इस विचार को प्रस्तुत करने हेतु उन्होंने पॉजिटिव शब्द का प्रयोग किया। इस इकाई में हम कॉम्टे के प्रत्यक्षवाद (Positivism) को समझेंगे।

4.1 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य प्रत्यक्षवाद की पृष्ठभूमि, उत्पत्ति, विकास और ऑगस्ट कॉम्टे का इसमें योगदान से अवगत करना है।

4.2 प्रत्यक्षवाद का अर्थ (Meaning of Positivism)

प्रत्यक्षवाद का शाब्दिक अर्थ है घटनाओं का प्रत्यक्ष अवलोकन करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचना। फ्रांसीसी परंपरा में 'Positive' शब्द का प्रयोग उस दृष्टिकोण के लिए किया जाता है जो रचनात्मक, निष्पक्ष या यथार्थवादी अवलोकन पर आधारित हो। कॉम्टे ने स्पष्ट किया कि प्राकृतिक विज्ञानों का तीव्र विकास इसलिए हुआ क्योंकि इनके माध्यम से विभिन्न पदार्थों का अध्ययन कल्पना के आधार पर नहीं, बल्कि अवलोकन, परीक्षण और वर्गीकरण के आधार पर किया जाता है। प्राकृतिक वैज्ञानिकों का मानना है कि प्रत्येक पदार्थ की प्रकृति और उससे संबंधित व्यवहार कुछ अपरिवर्तनीय नियमों पर आधारित होते हैं। यदि इन नियमों को अवलोकन और प्रयोग द्वारा जान लिया जाए, तो किसी भी पदार्थ की प्रकृति और उसके भविष्य के व्यवहार को जाना जा सकता है। यह दृष्टिकोण रचनात्मक, निष्पक्ष और यथार्थवादी होता है, इसीलिए हम इसे प्रत्यक्षवादी या 'Positive' दृष्टिकोण कहते हैं। पदार्थ और प्राकृतिक घटनाओं की तरह, सामाजिक घटनाएँ भी कुछ नियमों द्वारा नियंत्रित और निर्देशित होती हैं। सामाजिक घटनाओं को नियंत्रित करने वाले नियमों को धार्मिक और आध्यात्मिक आधार पर नहीं समझा जा सकता। प्रत्यक्षवाद ही एकमात्र ऐसी पद्धति या प्रणाली है जिसके द्वारा घटनाओं के अवलोकन, परीक्षण और वर्गीकरण द्वारा विभिन्न घटनाओं के पारस्परिक संबंधों और उन्हें नियंत्रित करने वाले नियमों को समझा जा सकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षवाद अवलोकन, परीक्षण और वर्गीकरण पर आधारित वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से सामाजिक घटनाओं को समझना है।

4.3 ऑगस्ट कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद

कॉम्टे को प्रत्यक्षवाद का जनक कहा जाता है। उनकी कई अवधारणाएँ प्रत्यक्षवादी सिद्धांत पर आधारित हैं, लेकिन उनके लेखन में इसे ज़्यादा स्पष्ट नहीं किया गया है। फिर भी, इसे निम्नलिखित तरीके से समझाया जा सकता है-

कॉम्टे के अनुसार, प्रत्यक्षवाद का अर्थ है 'वैज्ञानिक'। उनका मत है कि संपूर्ण ब्रह्मांड 'अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियमों' द्वारा व्यवस्थित और निर्देशित है और यदि हमें इन नियमों को समझना है, तो उन्हें केवल विज्ञान की विधियों से ही समझा जा सकता है, न कि धार्मिक या आध्यात्मिक आधारों पर। वैज्ञानिक विधियों में कल्पनाशीलता का कोई स्थान नहीं है, यह अवलोकन, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है। इस प्रकार,

अवलोकन, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण पर आधारित वैज्ञानिक विधियों के माध्यम से हर चीज़ को समझना और उससे ज्ञान प्राप्त करना ही प्रत्यक्षवाद है।

कॉम्टे का कहना है कि अनुभव, अवलोकन, प्रयोग और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित प्रक्रिया के माध्यम से न केवल प्राकृतिक घटनाओं का, बल्कि समाज का भी अध्ययन संभव है, क्योंकि समाज भी प्रकृति का एक अंग है। जिस प्रकार प्राकृतिक घटनाएँ कुछ नियमों पर आधारित होती हैं, उसी प्रकार प्रकृति के एक अंग के रूप में सामाजिक घटनाएँ भी कुछ नियमों के अनुसार घटित होती हैं। जिस प्रकार पृथ्वी की गति, ऋतुओं का परिवर्तन, चंद्रमा और सूर्य की गति, दिन और रात का होना आदि प्राकृतिक घटनाएँ आकस्मिक नहीं हैं, बल्कि कुछ निश्चित नियमों द्वारा निर्देशित होती हैं, उसी प्रकार मानवीय या सामाजिक घटनाएँ भी आकस्मिक नहीं हैं; वे भी कुछ सामाजिक नियमों के अंतर्गत आती हैं। अतः वास्तव में यह अध्ययन संभव है कि सामाजिक घटनाएँ कैसे घटित होती हैं या उनका क्रम और गति क्या हो सकती है। यह प्रत्यक्षवाद का पहला मूल सिद्धांत है।

प्रत्यक्षवाद की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह स्वयं को धार्मिक और दार्शनिक विचारों से दूर रखने का प्रयास करता है, क्योंकि इनके अध्ययन की पद्धति कभी वैज्ञानिक नहीं हो सकती। प्रत्यक्षवाद सामाजिक घटनाओं की व्याख्या कल्पना या दैवीय महिमा के आधार पर नहीं, बल्कि अवलोकन, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित प्रक्रिया के आधार पर करता है। प्रत्यक्षवाद की इस विशेषता को एक उदाहरण द्वारा सुन्दरतापूर्वक समझाते हुए डॉ. ब्रिजेस ने लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति आर्सेनिक के सेवन से मर जाता है, तो इस घटना की व्याख्या धर्मवादी, दार्शनिक और वैज्ञानिक या प्रत्यक्षवादी द्वारा अलग-अलग ढंग से की जाएगी, क्योंकि इन सभी के दृष्टिकोण भी भिन्न-भिन्न हैं। धर्मवादी उस व्यक्ति की मृत्यु को ईश्वरीय नियम मानेगा और कहेगा कि यह ईश्वर की इच्छा थी। इसके विपरीत, एक दार्शनिक कहेगा कि मिलन और वियोग एक प्राकृतिक नियम है और मृत्यु एक ऐसा अंतिम वियोग है जिसमें वियोग के बाद पुनः मिलन नहीं हो सकता। किन्तु इस मृत्यु के संबंध में एक वैज्ञानिक का मत और उसकी कार्य पद्धति उपरोक्त दोनों विचारों से सर्वथा भिन्न होगी। यदि किसी चिकित्सक को बताया जाए कि किसी व्यक्ति की आर्सेनिक के सेवन से मृत्यु हो गई है, तो चिकित्सक स्वयं जाकर मृत व्यक्ति की जांच करेगा और आर्सेनिक के तत्वों का विश्लेषण करके उस व्यक्ति पर आर्सेनिक के प्रभाव को देखेगा और फिर उस मृत्यु के संबंध में अपनी रिपोर्ट देगा। अतः स्पष्ट है कि वैज्ञानिक अवलोकन, परीक्षण और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित पद्धति के आधार पर अपना अध्ययन करते हैं और उसी से किसी विषय के बारे में ज्ञान प्राप्त करते हैं, यही प्रत्यक्षवाद है। प्रत्यक्षवादी अपने अध्ययन में धीरे-धीरे अनुभव और प्रयोग का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रत्यक्षवाद किसी भी तटस्थ विचार को स्वीकार नहीं करता क्योंकि सामाजिक जीवन में परिवर्तन उतना ही स्वाभाविक है जितना कि प्राकृतिक जगत में। समाज या सामाजिक घटनाओं की यह गतिशीलता किसी प्रकार की 'इच्छा' से नहीं, बल्कि कुछ प्राकृतिक नियमों द्वारा निर्देशित और संचालित होती है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, प्रत्यक्षवाद धार्मिक और आध्यात्मिक विचारों को अपने दायरे से पूरी तरह बाहर रखता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि ऐसे विचार एक प्रकार की 'अटकलबाजी' हैं। दूसरे शब्दों में, कॉम्टे का मानना है

कि धार्मिक और आध्यात्मिक 'अटकलबाजी' से निकले निष्कर्ष सत्य भी हो सकते हैं और काल्पनिक भी, यानी ऐसे निष्कर्षों की सत्यता या काल्पनिकता 'संयोग' या अनुमान की बात है और उनकी सत्यता या असत्यता का आकलन करना मुश्किल ही नहीं, बल्कि असंभव भी है। जो भी हो, वैज्ञानिक चिंतन कभी भी 'संयोग' या 'अनुमान' पर निर्भर नहीं हो सकता और न ही होना चाहिए। चूँकि प्रत्यक्षवाद एक वैज्ञानिक चिंतन प्रणाली है, इसलिए इसे सटीक होना चाहिए और 'अटकलबाजी' या अनुमान का वास्तविकता के क्षेत्र में कोई स्थान नहीं हो सकता।

अतः यह स्पष्ट है कि प्रत्यक्षवादी व्यवस्था के आधार पर किए गए अध्ययन और उससे प्राप्त निष्कर्ष वैज्ञानिक एवं विश्वसनीय होते हैं। कॉम्टे का कहना है कि यही कारण है कि वैज्ञानिक धार्मिक और दार्शनिक विचारधाराओं को अधिक महत्व नहीं देते। उनका क्षेत्र केवल सामाजिक अध्ययन तक ही सीमित है। लेकिन यदि हम सामाजिक अध्ययन को वैज्ञानिक स्तर पर लाना चाहते हैं, तो दार्शनिक और धार्मिक विचारधाराओं को सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र से भी हटा देना उचित होगा। ऐसा किए बिना समाजशास्त्र विज्ञान नहीं बन सकता।

कॉम्टे के अनुसार, प्रत्यक्षवादी प्रणाली के अंतर्गत, सबसे पहले हम-

(क) अध्ययन का विषय चुनते हैं और फिर

(ख) अवलोकन द्वारा उस विषय से संबंधित सभी तथ्य एकत्रित करते हैं और

(ग) इसके बाद हम इन तथ्यों का विश्लेषण करते हैं और उन्हें सामान्य विशेषताओं के आधार पर वर्गीकृत करते हैं और अंत में

(घ) उसी विषय से संबंधित निष्कर्ष निकालते हैं। इस प्रकार, अवलोकन, परीक्षण और वर्गीकरण प्रत्यक्षवाद का आधार हैं।

कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद या विज्ञान वर्तमान घटनाओं और तथ्यों से बाहर न तो कुछ देखता है और न ही पहचानता है, अर्थात् प्रत्यक्षवाद का क्षेत्र उन घटनाओं और तथ्यों तक सीमित है जिन्हें हम प्रत्यक्ष रूप से देख या देख सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि जो कुछ अज्ञात या अज्ञेय है उसे जानने या खोजने का प्रयास प्रत्यक्षवाद के अंतर्गत नहीं आता। इसका अर्थ केवल इतना है कि प्रत्यक्षवाद बिना किसी वास्तविक आधार के अज्ञात और अज्ञेय के पीछे नहीं भागता क्योंकि ऐसी काल्पनिक दौड़ किसी भी विज्ञान को शोभा नहीं देती, न ही वह किसी प्रकार का 'स्वप्न का महल' बुनकर अपने वैज्ञानिक स्तर पर स्थिर रह सकता है। अतः प्रत्यक्षवाद घटनाओं के पार या परे जाने का प्रयास नहीं करता क्योंकि केवल घटनाओं को ही जाना जा सकता है। एक प्रत्यक्षवादी एक समय में केवल उन्हीं घटनाओं को देखता या अध्ययन करता है जहाँ तक उस घटना से संबंधित तथ्यों का वास्तविक अवलोकन और परीक्षण संभव हो; और जब उस सीमा तक सभी विषय या घटनाएँ स्पष्ट हो जाती हैं, तब आगे कुछ करने का प्रयास किया जाता है ताकि किसी भी स्तर पर काल्पनिक चिंतन का सहारा लेने का अवसर ही न मिले।

4.4 प्रत्यक्षवाद की मान्यताएँ या विशेषताएँ (Assumptions or Characteristics of Positivism)

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर, मोटे तौर पर कॉम्टे के प्रत्यक्षवाद की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती हैं-

1. **कुछ सामाजिक नियम-** प्रत्यक्षवाद की पहली मान्यता यह है कि जिस प्रकार प्राकृतिक घटनाएँ आकस्मिक नहीं होतीं, बल्कि कुछ नियमों के अनुसार घटित होती हैं, उसी प्रकार सामाजिक घटनाएँ भी अनायास नहीं घटित होतीं। समाज भी प्रकृति का एक अंग है। अतः सामाजिक घटनाएँ भी कुछ नियमों के आधार पर घटित होती हैं और इन नियमों को वास्तविक अवलोकन, परीक्षण और प्रयोग द्वारा खोजा जा सकता है। इस रूप में, प्रत्यक्षवाद इस मान्यता पर आधारित है कि समाज कुछ सामाजिक नियमों द्वारा शासित और नियंत्रित होता है और इसलिए घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन संभव है।
2. **वास्तविक ज्ञान-** प्रत्यक्षवाद की दूसरी विशेषता यह है कि यह स्वयं को धार्मिक और दार्शनिक विचारों से दूर रखता है और वैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली के माध्यम से वास्तविक ज्ञान से संबंधित मानता है। कॉम्टे के प्रत्यक्षवाद में अनुमान, संयोग या अटकलबाज़ी के लिए कोई स्थान नहीं है। यह किसी भी निरपेक्ष विचार को स्वीकार नहीं करता क्योंकि सामाजिक जीवन में परिवर्तन स्वाभाविक है। इस अर्थ में, प्रत्यक्षवाद दूसरों की चापलूसी नहीं करता बल्कि वास्तविक अवलोकन, परीक्षण और प्रयोग के माध्यम से वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने पर बल देता है।
3. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण-** प्रत्यक्षवाद का कल्पना की उड़ान से कोई संबंध नहीं है। इसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक है और यह स्वयं 'विज्ञान' है। डॉ. ब्रिजेस ने लिखा है कि प्रत्यक्षवाद ईश्वरीय इच्छा या ईश्वरीय नियम में विश्वास नहीं रखता। यह अवलोकन, परीक्षण और प्रयोग को आधार मानकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अपना अध्ययन कार्य पूरा करता है।
4. **वैज्ञानिक पद्धति-** प्रत्यक्षवाद केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि वैज्ञानिक पद्धति से भी संबंधित है। इसका सरल अर्थ यह है कि प्रत्यक्षवाद के अंतर्गत घटनाओं का मनमाने ढंग से अध्ययन नहीं किया जाता। इसके लिए एक निश्चित वैज्ञानिक पद्धति अपनाई जाती है। इस वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत सबसे पहले अध्ययन हेतु किसी विषय का चयन किया जाता है, फिर वास्तविक अवलोकन के आधार पर उस विषय से संबंधित तथ्य एकत्रित किए जाते हैं, इस प्रकार एकत्रित तथ्यों का पुनः परीक्षण किया जाता है, फिर उनका वर्गीकरण किया जाता है और फिर अंततः अध्ययन के विषय से संबंधित कोई निष्कर्ष निकाला जाता है। इस प्रकार, प्रत्यक्षवाद अवलोकन, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की वैज्ञानिक पद्धति से संबंधित है।
5. **उन घटनाओं से असंबंधित जो प्रत्यक्ष नहीं हैं-** प्रत्यक्षवाद का ऐसी किसी भी घटना से कोई संबंध नहीं है जिसे हम प्रत्यक्ष रूप से देख या देख नहीं सकते। प्रत्यक्षवाद या प्रत्यक्षवाद उन घटनाओं तक सीमित है जो वास्तव में प्रत्यक्ष हैं। प्रत्यक्षवाद बिना किसी वास्तविक आधार के अज्ञात और अप्रत्यक्ष के पीछे नहीं भागता

क्योंकि इस प्रकार की काल्पनिक दौड़ किसी भी विज्ञान को शोभा नहीं देती और न ही यह किसी भी प्रकार का 'आलीशान पुलाव' पकाकर अपने वैज्ञानिक स्तर पर स्थिर रह सकता है।

6. **धर्म और विज्ञान का समन्वय -** कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद केवल 'विज्ञान' ही नहीं, बल्कि 'धर्म' भी है - मानवता का धर्म। यह प्रत्यक्षवाद भौतिक भावनाओं से प्रेरित मानवता के धर्म के आदर्शों पर आधारित एक नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना को अपना मुख्य उद्देश्य मानता है। प्रत्यक्षवाद के माध्यम से वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति संभव है, वास्तविक ज्ञान समाज में बौद्धिक और नैतिक एकता विकसित करने में सहायक होता है और इस प्रकार की एकता के माध्यम से मानव कल्याण को सहजता से प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार प्रत्यक्षवाद ही कॉम्टे का 'धर्म' है।
7. **धर्म और विज्ञान का समन्वय -** कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद केवल 'विज्ञान' ही नहीं, अपितु 'धर्म' - मानवता का धर्म- भी है। यह प्रत्यक्षवाद भौतिक भावनाओं से प्रेरित मानवता के धर्म के आदर्शों पर आधारित एक नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना को अपना मुख्य उद्देश्य मानता है। प्रत्यक्षवाद के माध्यम से वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति संभव है, वास्तविक ज्ञान समाज में बौद्धिक और नैतिक एकता विकसित करने में सहायक होता है तथा इस प्रकार की एकता के माध्यम से मानव कल्याण को सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार प्रत्यक्षवाद कॉम्टे का 'धर्म' है क्योंकि धर्म का अंतिम एवं चरम उद्देश्य भी मानव कल्याण ही है। इस प्रकार कॉम्टे के प्रत्यक्षवाद में विज्ञान और धर्म के बीच कोई संघर्ष नहीं है, बल्कि उनका समन्वय अंतर्निहित है।
8. **सामाजिक पुनर्निर्माण के साधन-** कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद एक उपयोगितावादी विज्ञान है और इस प्रकार यह मानता है कि प्रत्यक्षवाद के माध्यम से प्राप्त व्यावहारिक ज्ञान का उपयोग सामाजिक पुनर्निर्माण के साधन के रूप में किया जा सकता है। प्रत्यक्षवादी समाज में भय, असुरक्षा और स्वार्थ जैसी कोई चीज़ नहीं होगी, बल्कि प्रेम, सद्भावना और सहयोग का राज होगा। समाज के इस पुनर्गठन में, प्रत्यक्षवाद सभी हिंसक व्यवस्थाओं से दूर रहने का आग्रह करता है।

4.5 सारांश

प्रत्यक्षवाद का प्रथम एवं प्रमुख उद्देश्य मानव मन को धार्मिक एवं तात्विक अवधारणाओं या विचारों से मुक्त कर सामाजिक अध्ययन एवं अनुसंधान को वैज्ञानिक स्तर पर लाना है। सामाजिक अध्ययन में प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति का प्रयोग करके प्रत्यक्षवाद सामाजिक विज्ञान को भौतिकी, रसायन विज्ञान आदि के समान आवश्यक बनाना चाहता है। इस प्रकार प्रत्यक्षवाद वह वैज्ञानिक साधन बन जाता है जिसके द्वारा मनुष्य का बौद्धिक विकास संभव एवं सुगम होगा। बौद्धिक विकास के बिना सामाजिक प्रगति भी असंभव है; अतः प्रत्यक्षवाद सामाजिक प्रगति में भी सहायक होगा क्योंकि सामाजिक तथ्यों के अवलोकन, परीक्षण एवं वर्गीकरण की व्यवस्थित प्रक्रिया से हमें जो वास्तविक या प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होगा, उसके व्यावहारिक प्रयोग से सामाजिक प्रगति संभव होगी। वास्तविक या प्रत्यक्ष ज्ञान सामाजिक पुनर्गठन का ठोस आधार भी होगा। प्रत्यक्षवाद का अंतिम उद्देश्य सामाजिक पुनर्निर्माण या पुनर्गठन है।

4.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक - दोषी एवं जैन

बॉटमोर, टी.बी. (1978) सोशियोलॉजी, बम्बई, ब्लेकी एण्ड सनन।

कोजर, एल.ए. (1971) मास्टर्स ऑफ़ सोशियोलाजिकल थॉट, न्यूयार्क, हाकोर्ट ब्रास जोवानोविच।

पारसन्न, टालकट (1949) दि स्ट्रक्चर ऑफ़ सोशल एक्शन, न्यूयार्क, मैकग्राहिल।

टिमाशेफ, निकोलस एस. (1967) सोशियोलाजिकल टयूरी: इटस् नेचर एण्ड ग्रोथ, न्यूयार्क, रैंडम हाउस।

रेमन्ड, ऐरन (1966) मेन करन्टस इन सोशियोलाजिकल थॉट, वाल्यूम-1, लंदन, पेनग्यून बुक्स।

4.7 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक - दोषी एवं जैन

बोस, एन.के ., 1967, कल्चर एण्ड सोसाइटी इन इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई।

दोषी व जैन, 2009, भारतीय समाजसंरचना एवं परिवर्तन-, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

मदान टी(संपा) .एन ., 1991, रिलिजन इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

मजूमदार एम.टी ., 1979, इंडियन रिलीजियस हेरीटेजः ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, एलाइड पब्लि० प्रा० लि०, नई दिल्ली।

4.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. ऑगस्ट कॉम्टे के प्रत्यक्षवाद को विस्तार से व्याख्या कीजिए।
2. प्रत्यक्षवाद के अर्थ को समझिये एवं प्रत्यक्षवाद की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।

इकाई 5 . सामाजिक तथ्य

Social Facts

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 सामाजिक तथ्य

5.3 सामाजिक तथ्य-विशेषताएं

5.3.1 वाह्यता

5.3.2 बाध्यता

5.3.3 अन्य विशेषताएं

5.4 सामाजिक तथ्यो के प्रकार

5.4.1 सामान्य सामाजिक तथ्य

5.4.2 व्याधिकीय सामाजिक तथ्य

5.5 समाजों के वर्गीकरण के नियम

5.6 सारांश

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

5.8 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

इस इकाई का आरंभ समाज में सामाजिक तथ्यों को दुर्खीम के अनुसार समझना है। सबसे पहले सामाजिक तथ्यों का अर्थ व परिभाषा आदि को दुर्खीम के अनुसार समझाया गया है। जिसमें दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों के अध्ययन को ही समाजशास्त्र की विषयवस्तु माना है। दुर्खीम सभी मानवीय व्यवहारों को सामाजिक तथ्य मानता है

जिनकीउत्पत्ति समाज में होती है। इसके साथ सामाजिक तथ्यों की विशेषताओं- बाह्यता एवं बाध्यता तथा अन्य विशेषताओं का सविस्तार उल्लेख किया गया है। बाह्यता में- सामाजिक तथ्यों का अस्तित्व व्यक्तियों के बाहर एवं स्वतन्त्र होता है एवं बाध्यता में सामाजिक तथ्य सामूहिक चेतना की उपज होते हैं जोकि व्यक्ति के बाध्य रूप में कार्य करते हैं। सामाजिक तथ्य के प्रकार-सामान्य सामाजिक तथ्य व व्याधिकीय सामाजिक तथ्य व समाज के वर्गीकरण को सरल समाज, बहुखण्डीय सरल समाज, साधारण मिश्रित बहुखण्डीय समाज व दोहरे मिश्रित बहुखण्डीय समाज में प्रस्तुत कर समाज संदर्भ में सामाजिक तथ्यों की चर्चा-विभिन्न आधारित उदाहरणों के द्वारा विवेचना की गई है। जिसे हम आगे-सामाजिक तथ्यों को समाज संदर्भ में समझने की कोशिश करेंगे।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके द्वारा संभव होगाः

1. समाज में सामाजिक तथ्यों को परिभाषित करना,
2. सामाजिक तथ्यों की विशेषताओं-बाह्यता व बाध्यता को स्पष्ट करना,
3. सामाजिक तथ्यों के प्रकार-सामान्य सामाजिक तथ्य व व्याधिकीय सामाजिक तथ्यों को बताना
4. समाजों के प्रकार आदि की चर्चा करना

5.2 सामाजिक तथ्य

आइये सबसे पहले हम यहा सामाजिक तथ्य को दुर्खीम के अनुसार समझते है। दुर्खीम ने समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के रूप में सामाजिक तथ्यों की विवेचना की है और बताया है कि सामाजिक तथ्य वे तथ्य हैं जो सामूहिक चेतना से सम्बन्धित हों और व्यक्तिगत चेतना से स्वतन्त्र हों। सामाजिक तथ्यों के दबाव से ही व्यक्ति एवं समूह व्यवहार करते हैं। सामाजिक तथ्यों को परिभाषित करते हुए दुर्खीम लिखते हैं, ‘‘सामाजिक तथ्य व्यवहार (विचार अनुभव या क्रिया) का वह पक्ष है जिसका निरीक्षण वैषयिक रूप से संभव है और जो एक विशेष ढंग से व्यवहार करने को बाध्य करता है।’’ और दुर्खीम कहते है कि ‘‘सामाजिक तथ्य क्रिया करने का एक स्थायी अथवा अस्थायी तरीका है जो व्यक्ति पर बाहरी दबाव डालने में समर्थ होता है अथवा पुनः क्रिया करने का एक तरीका है जो किसी समाज में सामान्य रूप से पाया जाता है, किन्तु साथ ही साथ जो व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों से स्वतन्त्र पृथक् अस्तित्व रखता है।’’

अतः स्पस्ट है कि सामाजिक तथ्य क्रिया करने अथवा व्यवहार के तरीके हैं। इन क्रिया करने के तरीकों में दुर्खीम मानव के सोचने-विचारने और अनुभव करने के तरीकों को सम्मिलित करता है जो स्थायी अथवा अस्थायी हो सकते हैं। कुछ सामाजिक तथ्य स्थायी होते हैं। जैसे- आत्महत्या, विवाह एवं मुत्यु की संख्या में किसी भी समाज में थोड़ा-बहुत परिवर्तन होता है, इनकी वार्षिक दर लगभग स्थायी एवं स्थिर रहती है। इसलिए इन्हें सामाजिक तथ्यों की श्रेणी में रखा जाता है। निवास करने के तरीकों को भी क्रिया करने का तरीका माना गया है। नगरों में जनघनत्व में वृद्धि, मकान बनाने के तरीके, रहन-सहन, और जीवन व्यतीत करने के तरीकों को भी सामाजिक तथ्य माना गया है क्योंकि इनमें भी परिवर्तन बहुत कम होते हैं। इसी प्रकार से स्थायी और अस्थायी तरीके जो मनुष्यों की क्रियाओं, विचारों और जीवन पद्धतियों को निर्देशित करते हैं, सामाजिक तथ्य कहलाते हैं। अतः आप यहा सामाजिक तथ्य को समझ गए होगे। आइऐ अब इनकी विशेषताओं पर चर्चा करते है।

5.3 सामाजिक तथ्य- विशेषताएं

सर्वप्रथम हम यहा सामाजिक तथ्य की विशेषताओं को जानने का प्रयास करते है। दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य की दो प्रमुख विशेषताओं को बताया है- बाह्ृयता तथा बाध्यता। सामाजिक तथ्यों को स्पष्ट रूप से समझने के लिए इन दोनों विशेषताओं तथा तीन अन्य विशेषताओं को समझना आवश्यक है। आइये अब हम यहा इसको समझते है।

5.3.1 वाह्यता (Exteriority)

सामाजिक तथ्य की एक प्रमुख विशेषता यह है कि ये समाज वैज्ञानिक के व्यक्तिगत विचार, व्यक्तिगत चेतना और अधिकार क्षेत्र से बाहर होते हैं। इन पर व्यक्ति विशेष के विचारों या क्रिया का प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि इनका अस्तित्व व्यक्ति से स्वतन्त्र होता है। सामाजिक तथ्य का प्रथम गुण यही है की यह वाह्य होते है। सामाजिक तथ्यों कि वाह्यता से दुर्खीम का तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें इनका अस्तित्व व्यक्ति से स्वंतत्र होता है। अर्थात सामाजिक तथ्यों का संबंध न तो किसी व्यक्ति विशेष से होता है और न ही व्यक्तिगत चेतना का परिणाम होता है। इनका अस्तित्व अल्पकालिक न होकर दीर्घकालिक होता है। दुर्खीम ने यह स्पष्ट किया कि विभिन्न सामाजिक तथ्यों का निर्माण कुछ व्यक्तियों के द्वारा ही किया जाता है लेकिन एक बार जब कोई विशेषता सामाजिक तथ्य के रूप में विकसित हो जाती है तब उसका अस्तित्व व्यक्ति से स्वतन्त्र हो जाता है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों को वैयक्तिक तथ्यों से पृथक करके स्पष्ट बताया है। वैयक्तिक तथ्य व्यक्तिगत चेतना का परिणाम होता है जबकि सामाजिक तथ्यों का विकास सामूहिक चेतना के द्वारा होता है। जिस प्रकार व्यक्तिगत चेतना सामूहिक चेतना से भिन्न होती है; उसी तरह सामाजिक तथ्यों की प्रकृति भी व्यक्तिगत तथ्यों से भिन्न होती है। सामाजिक तथ्यों में वाह्यता की विशेषता को स्पष्ट करने के लिए दुर्खीम ने अनेक उदाहरण दिए हैं।

दुर्खीम ने लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति परिवार में अपने बहुत-से दायित्वों का निर्वाह करता है। व्यक्ति द्वारा परिवार के दायित्व का निर्वाह करना उसका व्यक्तिगत गुण नहीं है बल्कि यह एक ऐसा गुण है जो उसे परिवार से प्राप्त होने वाली शिक्षा के आधार पर प्राप्त होता है। व्यक्ति को तो यह भी मालूम नहीं होता कि वह अपने दायित्वों का निर्वाह क्यों कर रहा है? इस प्रकार दायित्व का निर्वाह करना उस सामाजिक तथ्य का परिणाम है जो व्यक्ति से वाह्य होते है। इसप्रकार एक व्यक्ति जब गिरजाघर या मन्दिर में जाना आरम्भ करता है तो उन्हीं धार्मिक विश्वासों तथा शिक्षाओं के अनुसार व्यवहार करने लगता है जो पहले से ही निर्धारित होती है। ऐसे सभी धार्मिक विश्वास उस व्यक्ति के आचरण के स्वरूप का निर्धारण करते हैं, यद्यपि यह विश्वास उस समय विकसित हो चुके होते हैं जब उस व्यक्ति का जन्म भी नहीं हुआ था। यहा स्पष्ट है कि सामाजिक तथ्य जिस व्यक्ति को प्रभावित करते हैं अथवा् जिस पर दबाव डालते हैं, उस व्यक्ति मे बहुत पहले से ही निर्मित हो चुके होते हैं।

अपनी पुस्तक के पहले अध्याय में ही दुर्खीम ने अनेक उदाहरणों के द्वारा सामाजिक तथ्यों में वाह्यता के गुणों को समझाने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार बातचीत करने का तरीका, संकेतों की भाषा, धर्म, तथा व्यावसायिक सम्बन्ध आदि अनेक ऐसे सामाजिक तथ्य हैं जो व्यक्ति के व्यवहारों को प्रभावित और नियंत्रित करते हैं। इस आधार पर दुर्खीम ने लिखा है कि ‘‘सामाजिक तथ्यों में कार्य करने, विचार करने तथा अनुभव करने के वे सभी तरीके सम्मिलित हैं

जो व्यक्ति पर बाहरी दबाव डालते हैं अतः वाह्यता दबाव के द्वारा उसके व्यवहारों को नियंत्रित करते हैं।’’ इस कथन से स्पष्ट होता है कि वाह्य रूप से व्यक्ति को प्रभावित करने वाले अथवा उसके व्यवहार को निर्देशित करने वाले तथ्य सामान्य रूप से समाज में ही विद्यमान रहते हैं तथा व्यक्तिक चेतन अथवा अचेतन दशा में इन्हीं तथ्यों के अनुरूप आचरण करता है।

दुर्खीम ने स्पष्ट किया कि सामाजिक तथ्य निश्चित रूप से वाह्य होते हैं लेकिन इन तथ्यों में व्यक्तिगत चेतना का कुछ-न-कुछ समावेश अवश्य होता है। इसे स्पष्ट करते हुए दुर्खीम ने बताया कि सामूहिक मस्तिष्क का निर्माण भी बहुत से व्यक्तियों के मस्तिष्कों के संयोजन से ही संभव होता है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपने संवेगों के आधार पर क्रियाएं करता है, अनुभव करता है अथवा् विचार करता है। जब अलग-अलग सामूहिक गुण से संचालित होने वाले मस्तिष्कों के सम्मिलन से एक नए सामाजिक मस्तिष्क का निर्माण होता है। तब इसी से सामूहिक चेतना जन्म लेती है। इस सामूहिक चेतना तथा व्यक्तिगत चेतना के बीच होने वाले संयोजन अथवा संघर्ष के फलस्वरूप व्यक्ति के मन में कुछ नई प्रतिभाओं या धारणाओं का जन्म होता है। सामूहिक चेतना से बनने वाली यह नयी प्रतिभाएं अथवा धारणाएं ही बाद में व्यक्ति के विचारों तथा उसकी क्रियाओं का निर्धारण करती है।

दुर्खीम का स्पष्ट मत है कि सामूहिक चेतना का निर्माण बहुत से व्यक्तियों की चेतना के सम्मिलन से अवश्य होता है लेकिन एक बार जब सामूहिक चेतना विकसित हो जाती है तब व्यक्ति का मस्तिष्क उसके अधीन हो जाता है।

इस मानसिक सत्ता के प्रभाव को ही दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य की वाह्यता के रूप में स्पष्ट किया है। सामाजिक तथ्यों में वाह्यता की विशेषता को सिद्ध करने के लिए दुर्खीम ने मुख्यतः चार तर्क प्रस्तुत किए हैं:

1) सर्वप्रथम, व्यक्तिगत मस्तिष्क सामूहिक मस्तिष्क से भिन्न होता है। सामूहिक मस्तिष्क एक स्वतन्त्र मानसिक सत्ता है जो व्यक्तिगत मस्तिष्क की क्रियाओं तथा विचारों को प्रभावित करती है सामाजिक तथ्य सामूहिक मस्तिष्क से सम्बन्धित होते हैं, इसीलिए वे व्यक्ति से वाह्य हो जाते हैं।

2) समूह-मस्तिष्क का निर्माण जिन सामाजिक परिस्थितियों में होता है, एक व्यक्ति विशेष की परिस्थितियां उससे भिन्न होती हैं। इसके फलस्वरूप भी समूह मस्तिष्क तथा व्यक्तिगत मस्तिष्क में एक स्पष्ट भिन्नता देखने को मिलती है। व्यक्ति जब समूह-मस्तिष्क के अधीन हो जाता है तब वह व्यक्तिगत इच्छा से नहीं बल्कि सामूहिक परिस्थितियों के अनुसार ही सोचता तथा व्यवहार करता है।

3) समाज में व्यक्ति पर वाह्य सामाजिक तथ्यों का प्रभाव इस बात से भी स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण समाज में घटित होने वाली घटनाओं में एक आश्चर्यजनक समानता देखेने को मिलती है। समान परिस्थितियों में आत्महत्या, विवाह-विच्छेद तथा अपराध की दर में पायी जाने वाली एकरूपता से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक तथ्यों की वाह्य विशेषता के कारण ही समाज में सामान्य व्यवहारों को प्रोत्साहन मिलता है। इस दृष्टिकोण से भी सामाजिक तथ्य वैयक्तिक विचारों तथा क्रियाओं से वाह्य होते हैं।

4) सामाजिक तथ्यों की वाह्यता एक सावयव के समान है जबकि व्यक्ति इस सावयव के एक अंग की तरह होता है। जिस प्रकार सावयव से पृथक रहकर किसी अंग का अस्तित्व नहीं रहता, उसी तरह सामाजिक तथ्यों से पृथक रहकर व्यक्तिगत तथ्यों का कोई अस्तित्व नहीं होता। अतः आप यहा सामाजिक तथ्यों की वाह्यता को भली भांति समझ गये होगें।

5.3.2 बाध्यता (Constraint)-

आइये अब हम यहा सामाजिक तथ्य की दुसरी विशेषता बाध्यता को समझने का प्रयास करते है। सामाजिक तथ्यों की एक विशेषता यह है कि इनका पालन व्यक्ति के लिए बाध्यतामूलक होता है। क्योंकि इनकीउत्पत्तिव्यक्तिगत चेतना से नहीं होती वरन् ये सामूहिक चेतना के परिणाम होते हैं। सामाजिक तथ्यों की बाध्यता से दुर्खीम का तात्पर्य इनके उस गुण से है जो व्यक्ति को एक विशेष ढंग से व्यवहार करने के लिए बाध्य करते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक तथ्य अपनी प्रकृति से केवल वाह्य ही नहीं होते बल्कि अपने दबाव-शक्ति के द्वारा यह व्यक्ति को उन कार्यों के लिए भी बाध्य करते हैं जो उसके इच्छा के विरूद्ध हो। सामाजिक तथ्य इस दृष्टिकोण से भी बाध्यतामूलक होते हैं कि व्यक्ति में सामाजिक तथ्यों को बदलने की क्षमता नहीं होती, यद्यपि सामाजिक तथ्य व्यक्तिगत व्यवहार को किसी भी रूप में बदल सकते हैं। इसका कारण स्पष्ट करते हुए दुर्खीम ने बतलाया कि समूह

मस्तिष्क से उत्पन्न होने वाली सामूहिक चेतना व्यक्तिगत चेतना से कहीं अधिक शक्तिशाली होती है, अतः सामाजिक तथ्यों में बाध्यता का गुण आ जाना बहुत स्वाभाविक है। यह सम्भव है कि विभिन्न परिस्थितियों में कुछ सामाजिक तथ्य दूसरे सामाजिक तथ्यों की तुलना में कम या अधिक बाध्यतामूलक हो लेकिन कोई भी सामाजिक तथ्य ऐसे नहीं मिलेगा जिसमे एक विशेष स्तर की दबावकारी शक्ति न हो। दुर्खीम का कथन है कि किसी विशेष सामाजिक तथ्य में दबाव की गहनता कुछ कम होने के कारण यदि व्यक्ति ऐच्छिक रूप से कार्य करना आरम्भ कर देता है तब प्रतिक्रिया के रूप में उस सामाजिक तथ्य के बाध्यतामूलक शक्ति तुरन्त बढ़ने लगती है। इसका तात्पर्य है कि सामाजिक तथ्यों में एक तरह की प्रतिरोधात्मक शक्ति भी होती है। सामाजिक तथ्यों में बाध्यता की विशेषता को स्पष्ट करने के लिए दुर्खीम ने दो प्रकार के बाध्यतामूलक तथ्यों का उल्लेख किया है। इन्हें दुर्खीम ने अप्रत्यक्ष बाध्यतामूलक तथ्य तथा प्रत्यक्ष बाध्यतामूलक तथ्य कहा है।

क) अप्रत्यक्ष बाध्यतामूलक तथ्य (Indirect Constraint)–

यह तथ्य वे हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति पर दबाव डालकर उसके व्यवहारों को समाज के सामान्य व्यवहारों के अनुकूल बनाते हैं। इसका उदाहरण देते हुए दुर्खीम ने बतलाया कि प्रत्येक समाज में अनेक नैतिक मूल्य पाए जाते हैं। इन मूल्यों के उल्लंघन के विरूद्ध प्रत्येक समाज में एक निश्चित दण्ड की व्यवस्था होती है। यह आवश्यक नहीं है कि नैतिक मूल्यों के उल्लंघन पर व्यक्ति को कठोर दण्ड ही दिया जाए लेकिन इतना अवश्य है कि नैतिक मूल्य अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति को एक विशेष ढंग से व्यवहार करने के लिए बाध्य अवश्य करते रहते हैं। इनके प्रभाव को स्पष्ट करते हुए दुर्खीम ने लिखा है कि ''यदि मैं अपने समाज की परम्परागत मान्यताओं को स्वीकार नहीं करता अथवा अपनी वेश-भूषा के लिए अपने समाज या वर्ग के रीति-रिवाजों को नहीं मानता हूं तो समाज मेरा जिस ढंग से उपहास करेगा, वह मुझे स्वयं प्रतिमानित व्यवहार करने की दिशा में ले जाएगा। इस प्रकार परम्पराओं तथा प्रथाओं की यह बाध्यता अप्रत्यक्ष बाध्यतामूलक तथ्यों का उदाहरण है। दूसरा उदाहरण देते हुए दुर्खीम ने लिखा है कि ''यदि मैं एक उद्योगपति हूं तो मैं अपनी इच्छा से हजारों वर्ष पुरानी तकनीक का उपयोग करके भी उत्पादन करने के लिए स्वतन्त्र हूं। लेकिन यदि मैं ऐसा करता हूं तो इसका तात्पर्य है कि मेरे बरबाद होने के दिन पास आ गये हैं। इसका विचार किये बिना भी यदि मैं पुरानी मशीनों का उपयोग करूंगा तो यह बाध्यतामूलक तथ्य कि प्रत्येक उद्योगपति को उन उपकरणों का उपयोग करना चाहिए जो दूसरे उद्योगपतियों के पास हैं, किसी-न-किसी रूप में मेरे व्यवहारों को अवश्य प्रभावित करेगा।''

ख) प्रत्यक्ष बाध्यतामूलक तथ्य (Direct Constraint)–

यह सामाजिक तथ्य वे हैं जो प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति पर दबाव डालकर उसकी इच्छा के विपरीत भी उसे एक विशेष ढंग से व्यवहार करने के लिए बाध्य करते हैं। इस तरह के सामाजिक तथ्य समाज के संगठन में ही निहित होते हैं। उदाहरण के लिए, जातिगत संगठन, धार्मिक संगठन तथा कानून आदि प्रत्यक्ष बाध्यतामूलक तथ्यों की प्रकृति को स्पष्ट करते हैं। इन्हें प्रत्यक्ष बाध्यतामूलक तथ्य इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह एक निश्चित दण्ड संहिता के आधार पर व्यक्ति के व्यवहारों को नियन्त्रित करते हैं। दुर्खीम का कथन है कि अनेक बार व्यक्ति ऐसा सोचता है कि

किसी नये विचार अथवा किसी आन्दोलन को स्वीकार करने का निर्णय उसने स्वयं लिया है किन्तु यह उस व्यक्ति का भ्रम है। इसका कारण है कि सामाजिक संगठन में स्वयं ऐसे प्रत्यक्ष बाध्यतामूलक तथ्य निहित हैं जो व्यक्ति को एक विशेष ढंग से विचार करने अथवा क्रिया करने के लिए बाध्य करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि परव्यक्तिगमन के दोषी व्यक्ति पर क्रोधित होने वाली भीड़ में सम्मिलित होकर यदि हम स्वयं भी उस व्यक्ति को मारने लगें तो हम यह सोच सकते हैं कि उसे मारने का निर्णय स्वयं हमारा है लेकिन वास्तव में हम ऐसा निर्णय नैतिक संहिता के अनुसार काम करने वाली भीड़ के दबाव के अनुसार ही लेते हैं। इस प्रकार दुर्खीम ने यह स्पष्ट किया कि प्रत्यक्ष बाध्यतामूलक तथ्यों का प्रभाव अप्रत्यक्ष बाध्यतामूलक तथ्यों की तुलना में कुछ अधिक होता है। अतः आप यहा सामाजिक तथ्यों की बाध्यता को समझ गये होगें। आइये अब हम आगे अन्य सामाजिक तथ्य की विशेषताओं को जानते है।

5.3.3 अन्य विशेषताएं-

सामाजिक तथ्यों की अन्य विशेषताओं निम्न है-

- **सामाजिक तथ्य काम करने, सोचने या अनुभव करने के तरीके हैं -**

दुर्खीम द्वारा परिभाषित सामाजिक तथ्यों से स्पष्ट है कि सामाजिक तथ्य समाज अथवा समूह में काम करने, सोचने और अनुभव करने के तरीके हैं जैसे- एक व्यक्ति अपने विवाह के बारे में सोचता है तब वह यह भी सोचता है कि विवाह के साथी का चुनाव उसके परिवार, वर्ग, जाति, शिक्षा, व्यवसाय, आर्थिक स्थिति आदि के अनुरूप हो। उसके इस सोच पर भी सामाजिक दबाव है। अतः यह सोच सामाजिक तथ्य है। हमारे व्यवहार और सोच-विचार समाज की देन हैं, समाज ही इनकीउत्पत्ति का स्रोत है।

- **सामाजिकउत्पत्ति व सार्वभौमिकता -**

सामाजिक तथ्य व्यक्ति की व्यक्तिगत चेतना की उपज नहीं वरन वे सामूहिक चेतना के परिणाम हैं। इनकीउत्पत्तिसमाज में होती है, समाज से होती है या इनका विकास समाज के इतिहास में जुड़ा हुआ है। जैसा समाज होगा जैसा उसका मिजाज होगा, उसी के अनुरूप उसके सामाजिक तथ्य पाये जायेगें। सामाजिक तथ्य सार्वभौमिक होते हैं अर्थात उनका प्रचलन सारे समूह और समाज में पाया जाता है, सभी उनका अर्थ लगाते हैं और पालन करते हैं। सामाजिक तथ्यों में केवल उन्हीं तरीकों को सम्मिलित किया जाता है जो सम्पूर्ण समाज में सामान्य रूप से पाये जाते हैं।

- **सामाजिक तथ्य सीखे जाते हैं-**

सामाजिक तथ्य सीखे जाते हैं क्योकि वे समाज की उपज है। अतः समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सामाजिक तथ्य सीखे जाते हैं। ये हमें वंशानुक्रमण, शारीरिक लक्षणों जैसे कालापन, गोरापन, आंख, नाक, कान एवं बालों की बनावट आदि की तरह माता-पिता से प्राप्त नहीं होते।

5.4 सामाजिक तथ्यों के प्रकार

सामाजिक तथ्यों के दुर्खीम ने दो प्रकार बताये है -सामान्य सामाजिक तथ्य व व्याधिकीय सामाजिक तथ्य। जिनकी व्याख्या निम्न प्रकार से है।

7.4.1 सामान्य सामाजिक तथ्य (Normal Social Facts) –

सामान्य सामाजिक तथ्य वे हैं जो समाज के स्वीकृत प्रतिमानों के अनुरुप होते है तथा सामाजिक जीवन के स्वास्थ्य में वृद्धि करते है दुर्खीम का कथन है कि सामान्य सामाजिक तथ्यों का तात्पर्य उन सामाजिक घटनाओं से है जो समाज द्वारा मान्यता प्राप्त स्तर के अनुरूप होती हैं। दुर्खीम ने स्वस्थ शरीर तथा अस्वस्थ अथवा रूग्ण शरीर की चर्चा करते हुए बहुत विस्तार के साथ सामाजिक तथ्यों की प्रकृति को स्पष्ट किया। उनके अनुसार जिन सामाजिक तथ्यों को साधारणतया लोग व्याधिकीय तथ्य मान लेते हैं, उनमें से अनेक तथ्य ऐसे होते हैं। जिन्हें सामान्य सामाजिक तथ्य ही कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए दुर्खीम ने बतलाया है कि अपराध एक सामान्य सामाजिक तथ्य है क्योंकि इसे स्पष्ट करते करते हुए रेमण्ड ऐरों ने लिखा है कि अपराध एक सामान्य घटना है क्योंकि अधिकांश समाजों में इसकी दर बहुत-कुछ सामान्य रूप में ही देखने को मिलती है। यदि इस अर्थ में हम अपराध अथवा आत्महत्या जैसी घटना को सामान्य मान सकते हैं तब यह जानने आवश्यक होगा कि 'सामान्य' शब्द से दुर्खीम का तात्पर्य क्या है, इसे स्पष्ट करते हुए दुर्खीम ने लिखा है, ''कोई भी वह घटना जो एक समाज के विकास की किसी विशेष अवस्था में सामान्य रूप से पायी जाती है, उसे हम एक सामान्य घटना कहते हैं।''

स्पष्ट है कि दुर्खीम ने सामान्य सामाजिक तथ्यों की प्रकृति को किसी समाज में एक विशेष काल के परिप्रेक्ष्य में ही स्पष्ट किया है। यदि हमें यह ज्ञात करना हो कि एक समाज विशेष में कौन-से तथ्य सामान्य तथ्य हैं, तो इसका निर्धारण करने के लिए हमें उस समाज में एक विशेष काल पर अपना ध्यान केंद्रित करना पड़ेगा। उदाहरण के लिए, वर्तमान काल में हमारे समाज के अन्तर्गत भ्रष्टाचार, एक सामान्य सामाजिक तथ्य हो सकता है लेकिन यह सम्भव है कि प्राचीनकाल में भ्रष्टाचार को एक सामान्य तथ्य के रूप में न देखा जाता हो। दुर्खीम ने बहुत स्पष्ट उदाहरण के द्वारा इस बात को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार यदि वृद्धावस्था को स्वयं में एक व्याधि अथवा बीमारी मान लिया जाय तो हम वृद्ध लोगों को 'स्वस्थ वृद्ध' तथा 'अस्वस्थ वृद्ध' जैसी दो श्रेणियों में नहीं बांट सकते। इसका तात्पर्य है कि समाज में यदि कोई तथ्य निश्चित क्रम तथा सामान्य दर से पाया जाता है तो उसे एक सामान्य तथ्य के रूप में स्वीकार कर लेना ही उचित है। इस आधार पर दुर्खीम ने पुनः यह स्पष्ट किया कि जो तथ्य समाज के संगठन तथा

एकीकरण के लिए उत्तरदायी होते हैं एवं जो व्यक्ति के व्यवहार का सामान्य अंग हो, उन्हें सामान्य सामाजिक तथ्य कहा जा सकता है। यदि इस दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो सामान्य सामाजिक तथ्यों की प्रकृति में अनेक विशेषताओं जैसे- सामान्यता, निश्चित दर, संगठनकारी शक्ति, विशिष्टता व उपयोगिता आदि पायी जाती है।

5.4.2 व्याधिकीय सामाजिक तथ्य (Pathological Social Facts)-

वे तथ्य हैं जो समाज के स्वीकृत प्रतिमानों के विपरीत होते हैं अर्थात समाज में रूग्णता पैदा करते हैं तथा समाज के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। अपराध, बाल-अपराध, डकैती, वेश्यावृत्ति, आत्महत्या आदि व्याधिकीय सामाजिक तथ्य हैं। जब समाज के व्याधिकीय तथ्य अधिक बढ़ जाते हैं तो समाज का सामान्य जीवन ठप हो जाता है। दुर्खीम कहते हैं कि समाजशास्त्र की विषयवस्तु की परिभाषा करने के लिए इन दोनों ही प्रकार के तथ्यों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। दुर्खीम ने तुलनात्मक आधार पर व्याधिकीय सामाजिक तथ्यों की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए बतलाया कि सामान्य सामाजिक तथ्यों में जहां सामान्यतया, सामाजिक स्वास्थ्य, उपयोगिता तथा संगठन के गुण होते हैं। दूसरी ओर व्याधिकीय सामाजिक तथ्य वे हैं जो समाज में किसी पीड़ा से उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, आत्महत्या एक सामान्य सामाजिक तथ्य हो सकती है लेकिन समाज में विसंगति की दशा उत्पन्न होने पर यदि विसंगत आत्महत्याएं होने लगें तो इन्हें व्याधिकीय सामाजिक तथ्य माना जायेगा। दुर्खीम का कथन है कि सामाजिक पीड़ा एक अचेतना की दशा है जो व्याधिकीय होती है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि समाज को क्षति पहुंचाने वाली घटनाएं जिन सामाजिक तथ्यों को जन्म देती हैं उन्हीं को दुर्खीम ने व्याधिकीय सामाजिक तथ्य कहा है।

वास्तविकता यह है कि व्याधिकीय सामाजिक तथ्यों के बारे में दुर्खीम के विचार अधिक स्पष्ट नहीं है। इसका कारण यह है कि एक ओर दुर्खीम ने अपराध तथा आत्महत्या को सामान्य सामाजिक तथ्य के रूप में स्वीकार किया है जबकि दूसरी ओर यह स्वीकार करते हैं कि समाज के मान्यता प्राप्त स्तर से भिन्न एवं समाज को क्षति पहुंचाने वाली घटनाएं व्याधिकीय सामाजिक तथ्य हैं। इस रूप में अपराध तथा आत्महत्या को भी व्याधिकीय सामाजिक तथ्य ही कहा जाना चाहिए था। इस समस्या का समाधान करते हुए दुर्खीम ने बतलाया कि सामाजिक तथ्यो के अध्ययन में केवल इतना जान लेना ही महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें जिन सामाजिक तथ्यों का अध्ययन करना हो; एक ओर उनसे कार्य-कारण सम्बन्ध की समझने का प्रयत्न किया जाये तथा दूसरी ओर समाज पर उनके प्रभावों की विवेचना की जाये। अतः आप यहा सामाजिक तथ्यों के प्रकारों- सामान्य सामाजिक तथ्य व व्याधिकीय सामाजिक तथ्य से भली भांति परिचित हो गये होगें।

5.5 समाजों के वर्गीकरण के नियम

सरलता के आधार पर दुर्खीम ने चार प्रकार के समाजों का उल्लेख किया है। -

1) सरल समाज (Simple Societies) –

सरल समाज को परिभाषित करते हुए दुर्खीम लिखते हैं, सरल समाज वह समाज है जो अकेला कार्यालय सम्पूर्ण है, जो किसी के अधीन नहीं है तथा जिसमें परस्पर सहयोग पाया जाता है। सरल समाज के खण्ड नहीं होते अर्थात् सरल समाज में और अधिक सरल समाज सम्मिलित नहीं होते अर्थात इसमें अतीत में भी किसी तरह के खण्ड या अन्य समाज सम्मिलित नहीं होने चाहिए। दुर्खीम ने सरल समाज के उदाहरण में घुमक्कड़ों के झुण्ड एवं गोत्र को दर्शाया है।

2) बहुखण्डीय सरल समाज (Simple Polysegmented Societies)–

इन्हें मिश्रित समाज भी कहते हैं। इनका निर्माण गोत्र समूहों के मिश्रण से होता है जिनमें एक से अधिक पहले से विद्यमान खण्डों का समावेश होता है। इसलिए इन्हें बहुखण्डीय समाज कहा जाता है। चूंकि इनका निर्माण करने वाले खण्ड सरल समाज होते हैं। अतः ये बहुखण्डीय सरल समाज कहलाते हैं। दुर्खीम ने आस्ट्रेलिया की जनजातियों, अमेरिका की इराक्विस जनजाति एवं प्राचीन यूनान की बिरादरी को इन समाजों श्रेणियों में सम्मिलित किया है।

3) साधारण मिश्रित बहुखण्डीय समाज (Simple Compounded Polysegmental Societies)–

इनका निर्माण बहुखण्डीय सरल समाजों के मिश्रण से होता है। इनकी सामाजिक संरचना जटिल हो जाती है। जनजातियों को इसी श्रेणी के समाज में रख सकते हैं।

4) दोहरे मिश्रित बहुखण्डीय समाज (Double compounded Polysegmental societies)–

दुर्खीम इन्हें सबसे जटिल समाज कहता है। जो विकास के क्रम में उच्चतम क्रम में है। इनका निर्माण साधारण मिश्रित बहुखण्डीय समाजों के मिश्रण से होता है। बड़े- बड़े नगर और राजधानियां इसी प्रकार के समाजों की श्रेणी में आते हैं।

बोध प्रश्न-1

I. सामाजिक तथ्य क्या है?

....
....
....

....
....
....

II. सामाजिक तथ्यों की दो विशेषताएं लिखिए।

....
....
....
....
....
....

III. सामाजिक तथ्यों के कितने प्रकार हैं नाम लिखिए?

....
....
....
....
....
....

IV. दुर्खीम ने सरलता के आधार पर कितने प्रकार के समाजों का उल्लेख किया है? उनका नाम लिखिए।

....
....
....
....
....
....

V. सामाजिक तथ्यों के सन्दर्भ में वाह्यता एवं बाध्यता को संक्षिप्त में लिखिए।

....
....
....

....

....

....

सत्य व असत्य बतलाइये-

VI. सामाजिक तथ्यों का व्यक्ति पर बाह्यतामूलक प्रभाव पड़ता है। (सत्य/असत्य)

VII. दुर्खीम ने समाजशास्त्र को एक विज्ञान मानने पर विशेष बल दिया (असत्य/सत्य)

खाली स्थान भरिए-

VIII. सामाजिक तथ्य कोई स्थिर धारणा नहीं अपितु....................धारणा है।

5.6 सारांश

दुर्खीम की पुस्तक ''The Rules of Sociological Method'' सन्- 1895 में प्रकाशित हुई। इसमें दुर्खीम ने कहा कि समाजशास्त्र एक प्रथक विज्ञान के रूप में तब तक स्थापित नहीं किया जा सकता जब तक कि इसकी एक विशिष्ट अध्ययन वस्तु और उसके अन्वेषण के लिए एक व्यवस्थित अध्ययन पद्धति विकसित न हो। इसमें सामाजिक तथ्यों को समाजशास्त्र की विषयवस्तु के रूप में स्थापित किया गया है। इस पुस्तक के कुल छः अध्यायों के प्रथम अध्याय में दुर्खीम ने समाजशास्त्र की विषय सामग्री एवं अनुसन्धान की समस्या के रूप में सामाजिक तथ्य की परिभाषा दी और उसके लक्षणों की व्याख्या की। दूसरे अध्याय में सामाजिक तथ्यों के वैज्ञानिक और वैषयिक अवलोकन के नियम निर्धारित किये गए हैं। तीसरे अध्याय में सामान्य तथा व्याधिकीय तथ्यों का विश्लेषण किया गया है। चतुर्थ अध्याय में सामाजिक तथ्यों के वर्गीकरण के नियमों की व्याख्या की गई है। पाचवें अध्याय में सामाजिक तथ्यों की विस्तृत व्याख्या की गई तथा अंतिम छठा अध्याय में निर्वचन व सामान्यीकरण की प्रणाली व संक्षिप्त निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। जिसमें दुर्खीम सभी मानवीय व्यवहारों को सामाजिक तथ्य मानता है। क्योंकि उनकीउत्पत्तिसमाज में होती है। स्वयं दुर्खीम कहते हैं कि ''सामाजिक तथ्य व्यवहार, विचार, अनुभव, क्रिया का वह पक्ष है जिसका निरीक्षण वैषयिक रूप से सम्भव है और जो एक विशेष ढंग से व्यवहार करने को बाध्य करता है।'' दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य की दो महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख किया है- बाह्यता एवं बाध्यता। बाह्यता अर्थात सामाजिक तथ्यों का अस्तित्व व्यक्तियों के बाहर एवं स्वतन्त्र होता है। उस पर व्यक्ति विशेष या वैज्ञानिक क्रिया का प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः सामाजिक तथ्यों कीउत्पत्तिभी समूह के सभी व्यक्तियों की सामूहिक चेतना के कारण होती है फिर भी वे व्यक्ति विशेष की क्रिया एवं विचारों से प्रथक होते हैं। सामाजिक तथ्य सामूहिक चेतना की उपज है। अतः यह व्यक्ति के लिए बाध्यतामूलक होते हैं। समूह या समाज सामाजिक तथ्यों- व्यवहार व क्रिया

आदि को मानने के लिए व्यक्ति को बाध्य करता है। दबाव डालता है। स्पष्टतः उपर्युक्त वर्णन से आप यहा पर समाज में सामाजिक तथ्यों को समझ गये होंगे।

5.7 परिभाषिक शब्दावली

सामाजिक तथ्य- सामाजिक तथ्य व्यवहार (विचार अनुभव या क्रिया) का वह पक्ष है जिसका निरीक्षण वैषयिक रूप से संभव है और जो एक विषेश ढंग से व्यवहार करने को बाध्य करता है। सामाजिक तथ्य वे तथ्य हैं जो सामूहिक चेतना से सम्बन्धित हों और जो व्यक्तिगत चेतना से स्वतन्त्र हों।

बाह्यता- सामाजिक घटनाओं या तथ्यों का निर्माण तो समाज के सदस्यों द्वारा ही होता है लेकिन सामाजिक तथ्य एक बार विकसित हो जाने के पश्चात फिर किसी एक व्यक्ति विशेष का नहीं रहता और वह इस अर्थ में कि इसे एक स्वतन्त्र वास्तविकता के रूप में अनुभव किया जाता है अर्थात वैज्ञानिक व्यक्ति का उससे कोई आन्तरिक सम्बन्ध नहीं होता और न नही इस पर किसी भी व्यक्ति विशेष की क्रिया का प्रभाव पड़ता है।

बाध्यता- सामाजिक तथ्यों का व्यक्ति पर बाध्यतामूलक प्रभाव पड़ता है। वास्तव में व्यक्ति जो भी कार्य करता है, उस पर सामाजिक तथ्य का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है और वह इस रूप में सामाजिक तथ्यों का निर्माण समाज के किसी एक सदस्य के द्वारा नहीं होता है अपितु इसमें अनेक सदस्यों का योगदान होता है। अर्थात सामूहिक चेतना की उपज होते हैं। इसलिए ये बाध्यकारी होते हैं।

5.8 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

I- सामाजिक तथ्य व्यवहार (विचार अनुभव या क्रिया) का वह पक्ष है जिसका निरीक्षण वैषयिक रूप से संभव है और जो एक विषेश ढंग से व्यवहार करने को बाध्य करता है। सामाजिक तथ्य वे तथ्य हैं जो सामूहिक चेतना से सम्बन्धित हों और जो व्यक्तिगत चेतना से स्वतन्त्र हों।

II- बाह्यता एवं बाध्यता

III- सामान्य सामाजिक तथ्य व व्याधिकीय सामाजिक तथ्य।

IV- सरलता के आधार पर दुर्खीम ने चार प्रकार के समाजों का उल्लेख किया है - सरल समाज, बहुखण्डीय सरल समाज, साधारण मिश्रित बहुखण्डीय समाज व दोहरे मिश्रित बहुखण्डीय समाज ।

V- सामाजिक तथ्यों कि वाह्यता से दुर्खीम का तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें इनका अस्तित्व व्यक्ति से स्वंतत्र होता है। अर्थात सामाजिक तथ्यों का संबंध न तो किसी व्यक्ति विशेष से होता है और न ही व्यक्तिगत चेतना का परिणाम होता है। इनका अस्तित्व अल्पकालिक न होकर दीर्घकालिक होता है। एवं बाध्यता में इनका पालन व्यक्ति के लिए बाध्यतामूलक होता है। क्योंकि इनकीउत्पत्तिव्यक्तिगत चेतना से नहीं होती वरन् ये सामूहिक चेतना के परिणाम होते

हैं। सामाजिक तथ्यों की बाध्यता से दुर्खीम का तात्पर्य इनके उस गुण से है जो व्यक्ति को एक विशेष ढंग से व्यवहार करने के लिए बाध्य करते हैं।

सत्य व असत्य

VI- सत्य
VII- सत्य

खाली स्थान भरिए-

VIII- गतिशील

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Giddens, Anthony, (1978) Durkheim, Harvester press, Hassocks

Aron, Raymond, (1970) Main currents in sociological thought, vol.1 & 2, Penguin books, London

Bottomore, T.B., (1969) Socioloogy: A guide to problem and literature, Allen and unvin, London

Durkheim, Emile, (1964) The Rules of sociological method, Free press, Newyork

Sorokin, (1978), Contemporary Sociological theories, kalyani publishers, New delhi

5.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

Jones, Robert Alun, (1986) Emile Durkheim- An Introduction to four Major Works, sage publications, Inc.: Beverly Hills

Coser, Lewis A, (1996) Masters of Sociological Thought, Rawat publication, Jaipur

Giddens, Anthony, (1993) Sociology, polity press, Cambridge

Mitchell, G Duncan, (1979) A New Dictionary of Sociology, Routledge & Kegan Paul, London

गुप्ता एवं शर्माए (2006) समाजशास्त्रए साहित्य भवन पब्लिकेशनए आगरा

सिहं जे0 पी0ए (2008) समाजशास्त्र-अवधारणाएं एवं सिद्धान्तए पीएचआई लर्निग नई

दिल्ली

हारालाम्बोस एम0, 1998, सोशियोलोजी: थीम्स एण्ड प्रर्सपेक्टिव, आ ॅक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. दुर्खीम के सामाजिक तथ्यों का अर्थ स्पष्ट कीजिए व इससे संबंधित विचारों की विवेचना कीजिए।
2. सामाजिक तथ्य क्या है? एवं सामाजिक तथ्यों की विशेषताएं एवं प्रकार का सविस्तार वर्णन कीजिए।
3. दुर्खीम के सामाजिक तथ्यों के सन्दर्भ में समाजो के वर्गीकरण का वर्णन कीजिए।

इकाई-6 आत्महत्या का सिद्धांत

Theory of Suicide

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 आत्महत्या का सिद्धांतः अर्थ व परिभाषा एवं कारक

6.3 आत्महत्या के कारक

6.4 आत्महत्या के प्रकार

6.4.1 अहंवादी आत्महत्या

6.4.2 परार्थवादी आत्महत्या

6.4.3 असामान्य (आदर्शहीन) आत्महत्या

6.5 सारांश

6.6 पारिभाषिक शब्दावली

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

इस प्रस्तुत इकाई में इमाईल दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित आत्महत्या का सिद्धांत का उल्लेख विस्तार पूर्वक से प्रस्तुत खण्डों में किया गया है। आत्महत्या के सिद्धांत में सर्वप्रथम यह दर्शाया गया है कि आत्महत्या का अर्थ व परिभाषा कारक व उनके प्रकार समाज में किस प्रकार से हैं। किस प्रकार समाज में आत्महत्या हो रही है व कोन सा पक्ष इनके

लिए उत्तरदायी है आदि। इस सिद्वांत में दुर्खीम उल्लेख करते हैं कि आत्महत्या एक सामाजिक तथ्य है, यह व्यक्ति का निजी कार्य नहीं है, अपितु दुर्खीम ने स्वयं समाज को ही आत्महत्या के लिए उत्तरदायी ठहराया है। उनकी मान्यता थी कि आत्महत्या की व्याख्या समाजशास्त्रीय आधार पर ही की जानी चाहिए। अर्थात समाज या समूह ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करता है कि उनसे विवश होकर ही व्यक्ति आत्महत्या का सहारा लेता है। जिसका उल्लेख दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित/ पुस्तक Le Suicide (The Suicide) सन् 1897 में विस्तार पूर्वक से किया गया है।

इस सिद्धांत को पढ़ने के उपरान्त आप समाज में आत्महत्या से संबन्धित तथ्यों का विश्लेषण करने में मदद मिलेगी।

6.1 उद्देश्य

इस प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के उपरान्त आपके लिए संभव होगाः-

☐ समाज में आत्महत्या की परिभाषा व अर्थ को जानना।

☐ समाज में आत्महत्या के लिए उत्तरदायी कारकों की विवेचना करना।

☐ समाज में घटित आत्महत्या के प्रकार व उत्पन्न उत्तरदायी परिस्थितियों की व्याख्या करना।

6.2 आत्महत्या का सिद्धांतः अर्थ व परिभाषा एवं कारक

फ्रांस के सामाजिक विचारकों में दुर्खीम को आगस्ट काम्ट का उत्तराधिकारी माना जाता है। क्योंकि दुर्खीम ने समाजशास्त्र को वैज्ञानिक धरातल प्रदान किया। इनका जन्म 15 अप्रैल 1858 सन् में पूर्वी फ्रांस के लारेन प्रान्त में स्थित एपिनाल (म्चपदंस) नामक नगर में एक महूदी परिवार में हुआ था। इनके पारिवारिक व शैक्षणिक जीवन के बाद इन्होंने अनेक सिद्धांत समाजशास्त्र में प्रतिपादित किये। उनमें से आत्महत्या का सिद्वांत एक प्रमुख सिद्वांत है जिसका विवरण निम्न है-

दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित पुस्तक Le suicide (The suicide) सन् 1897 में प्रकाशित हुई जिसमें आत्महत्या के सिद्धांत के बारे में उल्लेख है। इस पुस्तक में सर्वप्रथम आत्महत्या के अर्थ को समझाया गया है। सामान्य रूप से पूर्व में यह समझा जाता है कि व्यक्ति के स्वयं के प्रयत्नों द्वारा घटित मृत्यु ही आत्महत्या है, लेकिन दुर्खीम इस सामान्य अर्थ को अस्वीकार करते हैं और कहते हैं कि हम आत्महत्या को एक ऐसी मृत्यु की संज्ञा दे सकते हैं, जोकि किसी विशेष उद्देश्य के लिए घटित हुई हो। लेकिन ऐसा कहने में हमारे समक्ष सबसे बड़ी समस्या यह है कि आत्महत्या करने के पश्चात आत्महत्या करने वाले के उद्देश्य के विषय में जानकारी किस प्रकार प्राप्त की जाए। इन्हीं तथ्यों को

ध्यानान्तर्गत रखकर दुर्खीम ने आत्महत्या को समाजशास्त्रीय प्रारूप में इस प्रकार परिभाषित किया कि ''आत्महत्या शब्द का प्रयोग उन सभी मृत्युओं के लिए किया जाता है जोकि स्वयं मृत व्यक्ति के किसी सकारात्मक या नकारात्मक ऐसे कार्य के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम होते हैं जिनके बारे में वह व्यक्ति जानता है कि वह कार्य इसी परिणाम अर्थात मृत्यु को उत्पन्न करेगा। अतः उपर्युक्त उल्लेखित पुस्तक में दुर्खीम ने बहुत से आंकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट किया कि आत्महत्या किसी व्यक्तिगत कारण का परिणाम नही होती अपितु यह एक सामाजिक तथ्य है। जोकि सामाजिक क्रियाओं का परिणाम है। अतः आप यहा आत्महत्या के अर्थ से भली भाॅंति परिचित हो गये होगें।

6.3 आत्महत्या के कारक

आप उपर्युक्त लेखन सामग्री पढ़कर परिचित हो गये होंगे कि दुर्खीम आत्महत्या को एक वैयक्तिक घटना नहीं, बल्कि सामाजिक घटना मानते हैं। आइए अब हम इन पर विवेचना करें।

अनेक विद्वानों का मत है कि आत्म्हत्या की घटना पागलपन तथा एकोन्माद से घनिष्ठतः संबंधित है। कुछ विद्वान आत्महत्या के सम्बन्ध में प्रजाति और वंशानुक्रमण को प्रमुख मानते हैं। उसी प्रकार कुछ भौगोलिकवादियों का मत है कि आत्महत्याएं भौगोलिक परिस्थितियों जैसे तापमान, मौसम, व जलवायु आदि से प्रभावित होती है, जबकि कुछ विद्वान निर्धनता, निराशा, व मद्यपान आदि के आधार पर आत्महत्या जैसी घटना की व्याख्या करने का प्रयास करते हैं। लेकिन दुर्खीम इन सभी विद्वानों के विचारों से सहमत नही है। वे कहते हैं कि आत्महत्या की सामान्य वस्तुनिष्ठ व्याख्या इन आधारों पर संभव नहीं है। क्योंकि ये आधार वैयक्तिक है। आत्महत्या की प्रकृति सामाजिक है। इसलिए इसकी व्याख्या समाज संदर्भ में होनी चाहिए। वास्तविकता तो यह है कि आत्महत्या का सम्बन्ध कुछ विशेष सामाजिक दशाओं एवं उनसे किए गये वैयक्तिक अनुकूलन की मात्रा से होता है। स्वयं दुर्खीम के अनुसार, ''आत्महत्या का सामाजिक पर्यावरण की विभिन्न दशाओं के बीच का सम्बन्ध उतना ही अधिक प्रत्यक्ष और स्पष्ट होता है जितना कि जैविकीय और भौतिक दशाएं आत्महत्या के साथ एक अनिश्चित और अस्पष्ट सम्बन्ध को स्पष्ट करती है।'' अतः इस कथन के आधार पर स्पष्ट है कि एक सन्तुलित व्यक्तित्व के लिए यह आवश्यक होता है कि सामाजिक दशाओं तथा सामूहिक चेतना का व्यक्ति के जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव स्वस्थ हो। लेकिन जब इसके सापेक्ष व्यक्ति के जीवन पर समूह के नियन्त्रण में आवश्यकता से अधिक वृद्धि अथवा कमी होने लगती है तब सामाजिक दशाएं व्यक्ति को अस्वस्थ रूप से प्रभावित करना आरम्भ कर देती है। यही दशाएं आत्महत्या का कारण बनती है।

दुर्खीम कहते हैं कि सामाजिक कारणों की सहायता से हमें भौतिक कारणों का प्रभाव बताया जाता था। यदि स्त्रियां पुरूषों की अपेक्षा कम आत्महत्याएं करती हैं, तो इसके पीछे कारण यह है कि वे पुरूषों की अपेशा सामूहिक-जीवन में बहुत कम भाग लेती है, और वे इसके सामूहिक जीवन के अच्छे या बुरे प्रभाव को जीवन में इनके सापेक्ष कम अनुभव करती है। यही प्रभाव दुर्खीम ने अपने अध्ययन के आंकड़ों के आधार पर अधिक आयु के व्यक्तियों तथा बच्चों के सम्बन्ध आदि में भी लागू किया।

दुर्खीम अपने अध्ययन में स्पष्ट करते हैं कि समाज में घटित होने वाली आत्महत्या की दर की व्याख्या केवल समाजशास्त्रीय आधारों पर ही की जा सकती है। एक निश्चित समय पर समाज का नैतिक संगठन ऐच्छिक मृत्युओं के लिए अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति अपने ऊपर विशेष शक्ति की मात्रा लिए हुये एक सामूहिक व सामाजिक शक्ति का दबाव अनुभव करता है। जिसके परिणामस्वरूप वह आत्महत्या की ओर बाध्य होता है। आत्महत्या करने वाले के कार्य जोकि पूर्व में केवल उसके वैयक्तिक स्वभाव को व्यक्त करते प्रतीत होते हैं, वास्वविक रूप में एक सामाजिक अवस्था के पूरक और विस्तार होते हैं, जिनकी अभ्यिव्यक्ति आत्महत्या के परिणाम में परिणित होती हैं। इसलिए वास्तविक तथ्यों के अनुसार प्रत्येक मानव समाज में कम या अधिक रूप में आत्महत्या की प्रवृति पाई जाती है। प्रत्येक सामाजिक समूह में आत्महत्या के लिए अपने अनुसार एक सामूहिक प्रवृत्ति पाई जाती है। जोकि वैयक्तिक प्रवृतियों को उत्पन्न करती है, न कि वैयक्तिक प्रवृतियों का परिणाम होती है। सम्पूर्ण सामाजिक समूह की ये प्रवृतियां व्यक्तियों को प्रभावित करके आत्महत्या का प्रमुख कारण बनती है। वे तो केवल ऐसे प्रभाव मात्र है जिनको आत्महत्या करने वाले व्यक्ति की नैतिक प्रवृति से लिया गया है। जोकि समाज की नैतिक स्थिति की एक प्रति-ध्वनि है। व्यक्ति जीवन में अपनी उदासीनता को समझाने के लिए अपने चारों ओर की तात्कालिक परिस्थितियों को दोषी ठहराता है, कि उसका जीवन दुखी है क्योंकि वह दुखी है। लेकिन वास्तविकता में वह बाहरी परिस्थितियों के कारण दुखी है। अपितु ये सभी बाहरी परिस्थितियां उसके जीवन की इधर-उधर की घटना नहीं, बल्कि वही समूह की है जिसका कि वह सदस्य है। यही कारण है कि ऐसी कोई सामाजिक परिस्थिति नहीं होती जोकि आत्महत्या के लिए अवसर का काम न कर सके। यह सब तो इस बात पर निर्भर करता है कि आत्महत्या की प्रवृति को उत्पन्न करने वाले कारण कितनी तीव्रता से व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। अतः उपर्युक्त विवरण से आप जान गये होंगे कि आत्महत्या एक सामाजिक घटना तथ्य है जिसको सामाजिक कारक के संदर्भ में ही स्पष्टता से समझा जा सकता है।

उपर्युक्त सम्बन्ध में एक प्रश्न स्वाभाविक उठता है कि यदि सामाजिक दशाएं ही आत्महत्या का कारण है तो समान सामाजिक दशायें होने पर उसमें रहने वाले व्यक्तियों में आत्महत्या की घटनाएं एक-दूसरे से भिन्न क्यों होती है? इस सन्दर्भ में दुर्खीम अपने अध्ययन में स्पष्ट करते हैं कि आत्महत्या को प्रेरणा देने वाली दशाएं प्रत्येक समाज में क्रियाशील रहती है लेकिन विभिन्न व्यक्तियों पर इनका प्रभाव समान नहीं होता है। क्योंकि इनका प्रभाव किसी व्यक्ति पर तब पड़ता है जब तक व्यक्ति का व्यक्तित्व उसे अपना न ले। यही कारण है कि निर्धनता तथा असुखी वैवाहिक जीवन की यातना को कुछ लोग सह लेते हैं। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो इस यातना को सह नहीं पाते हैं और उसके साथ अनुकूलन करने में अपने को असमर्थ पाकर आत्महत्या की ओर प्रेरित हो जाते हैं। अर्थात एक विशेष दशा को कुछ लोग बहुत सामान्य समझकर उसे यूं ही छोड़ देते हैं। अथवा उसके प्रति उदासीन बने रहते हैं। वहीं दूसरी ओर कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जोकि उसी दशा के उत्पन्न होने या तो पूरी तरह से टूट जाते हैं और उन्हें अपने जीवन की भी चिन्ता नहीं रहती है। तथा परिणाम आत्महत्या होती है।

अर्थात स्पष्ट है कि आत्महत्या को प्रेरणा देने वाली विभिन्न सामाजिक दशाओं के प्रति जो व्यक्ति जितना अधिक लगाव महसूस करते हैं, उनमें आत्महत्या की ओर बढ़ जाने की सम्भावना उतनी अधिक हो जाती है। इसी संदर्भ

में दुर्खीम अपने अध्ययन में लिखते हैं कि ''यह निश्चित प्रतीत होता है कि कोई भी सामूहिक भावना व्यक्तियों को तब तक प्रभावित नहीं कर सकती जब तक वे उसके प्रति उदासीन बने रहें।'' अतः यहां पर दुर्खीम के इस कथन से आप जान गये होंगे कि दुर्खीम का आत्महत्या के प्रति स्वरूप क्या है। आइए अब हम यहां दुर्खीम द्वारा अध्ययन में प्रतिपादित आत्महत्या से संबंधित आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर कुछ परिणामों पर नजर डालें-

□ आत्महत्या की दर प्रत्येक वर्ष लगभग एक सी रहती है।

□ सर्दियों की तुलने में गर्मियों में आत्महत्याएं अधिक होती हैं।

□ कम आयु के लोगों की अपेशा अधिक आयु के लोगों में आत्महत्या की दर अधिक पायी जाती है।

□ सामान्य जनता की तुलना में सैनिक लोग अधिक आत्महत्याएं करते हैं।

□ अविवाहित और सुखी पारिवारिक जीवन से वंचित लोगों में उन व्यक्तियों की तुलना में आत्महत्या की दर अधिक होती है। जो विवाहित अथवा सुखी परिवारिक जीवन व्यतीत कर रहे होते हैं।

□ कैथोलिक धर्म को मानने वालों की तुलना में प्रोटेस्टेण्ट धर्म को मानने वाले लोग अधिक आत्महत्याएं करते हैं। क्योंकि प्रोटेस्टेण्ट धर्म व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर अधिक बल देता है। जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्तियों के व्यवहारों पर इतना नियन्त्रण स्थापित नहीं हो पाता कि वे पूर्णतया एक नैतिक समुदाय में संयुक्त हो सके।

□ गावों की तुलना में शहरों में अधिक आत्महत्याएं होती हैं।

अतः उपर्युक्त परिणामों से आप जान गए होगें कि आत्महत्या एक सामाजिक तथ्य है, जिसकी व्याख्या समाजशास्त्रीय आधार पर की जानी चाहिए।

बोध प्रश्न-1

i) दुर्खीम ने आत्महत्या के लिए किसे उत्तरदायी ठहराया?

....
....
....

ii) दुर्खीम ने आत्महत्या को क्या माना?

....
....
....

iii) दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित आत्महत्या को चार पंक्तियों में परिभाषित कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....

iv) दुर्खीम द्वारा आत्महत्या के बारे में किस पुस्तक में उल्लेख किया गया है? नाम लिखिए।

....
....
....
....

6.4 आत्महत्या के प्रकार

दुर्खीम ने अपने अध्ययन आंकडों के निष्कषों के आधार पर तीन प्रकार की आत्महत्या का उल्लेख किया है-

1. अहंवादी आत्महत्या (Egoistic suicide)
2. परार्थवादी आत्महत्या (Altruistic suicide)
3. असामान्य (आदर्शहीन) आत्महत्या (Anomie suicide)

जिनका विवरण निम्न प्रकार से आगे है-

6.4.1 अहंवादी आत्महत्या-

दुर्खीम ने अहंवादी आत्महत्या में बताया कि इस प्रकार की आत्महत्या में व्यक्ति समाज से अपने को प्रथक अनुभव करता है। व्यक्ति अपने स्वार्थ में इतना डूब जाता है कि उसे ऐसा अनुभव होने लगता है कि सभी उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। वह अपने को कटा हुआ महसूस करने लगता है। जिसके परिणामस्वरूप उसके अहं को ठेस लगती है और वह अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देता है। दुर्खीम ने अहंवादी आत्महत्या सम्बन्धी उपर्युक्त विचार को और भी स्पष्ट करने के लिए इस बात की विवेचना की है कि धर्म, परिवार, राजनीति व समाज आदि किस प्रकार आत्महत्या की प्रवृति को प्रभावित करते हैं। आइए अब हम यहां पर इनमें से एक के आधार पर अर्थात परिवार के आधार पर समझने का प्रयास करते हैं।

दुर्खीम ने परिवार और अहंवादी आत्महत्या में सह सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है। आपने परिवार को गृहस्थ-समाज की संज्ञा दी है। आपके अनुसार, व्यक्ति पर इस समाज का स्वस्थ व अस्वस्थ दोनों की प्रकार का प्रभाव पड़ता है। पारिवारिक समूह में जितनी अधिक एकता व संगठन होता है, उस परिवार के सदस्य आत्महत्या की ओर उतने ही कम अग्रसर होते हैं। और अधिक स्पष्ट रूप में अविवाहित की अपेक्षा विवाहित व्यक्तियों में कम आत्महत्याएं पाई जाती हैं, क्योंकि माता-पिता व बच्चों के सम्मिलित समूह का उन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। अर्थात परिवार में जितना अधिक संगठन व एकता होगी उतना ही परिवार के प्रति व्यक्ति का लगाव बढ़ेगा। जिसके फलस्वरूप वह अपने अहं को ठेस लगने से बचायेगा व परिवार में भावात्मक लगाव होगा व अपनी बातों को परिवार में सम्मिलित करेगा। जिससे आत्महत्या से वह बचेगा। लेकिन इसके विपरीत जब व्यक्ति पारिवारिक समूह से वंचित होता है, तब वह अपने को संसार में अकेला महसूस करने लगता है, और उसके अहं को ठेस लगती है, उसे ऐसा अनुभव होने लगता है कि अब उसकी जरूरत समाज को नहीं है। जिसके परिणाम में वह आत्महत्या का सहारा लेता है। स्वयं दुर्खीम लिखते हैं कि ''परिवार आत्महत्या के विरूद्ध एक शक्तिशाली बचाव है। इसी कारण इसका संगठन जितना दृढ़ होगा, उतना ही आत्महत्या से हमारा बचाव अधिक संभव होगा।'' इसी प्रकार धर्म आदि का प्रभाव भी आत्महत्या पर पड़ता है। अतः स्पष्टतः आप यहां पर आत्महत्या के अहंवादी प्रकार को व उसके समाज में घटित होने की स्थिति को भली प्रकार से समझ गए होंगे।

6.4.2 परार्थवादी आत्महत्या -

परार्थवादी आत्महत्या, अहंवादी आत्महत्या का विपरीत रूप है। दुर्खीम के अनुसार, परार्थवादी आत्महत्या में व्यक्ति समाज में अपने को बहुत घुला-मिला महसूस करता है, व्यक्तिगत हित सामूहिक हित में विलीन हो जाते हैं। व्यक्ति और समाज के बीच की दूरी समाप्त हो जाती है और सामूहिक हित से प्रेरित होकर वह अपने जीवन का बलिदान कर देता है। और अधिक स्पष्ट रूप में दुर्खीम कहते हैं कि परार्थवादी आत्महत्या तब घटित होती है जबकि समाज में अत्यधिक एकता व संगठन देखने को मिलता है। और ऐसी स्थिति में समाज या समूह में आत्महत्या को

एक कर्तव्य के रूप में स्वीकार किया जाता है, जैसे- सैनिकों द्वारा की जाने वाली आत्महत्या व जौहर आदि आत्महत्या इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती है। इसी प्रकार भारत की राजपूत-रमणियों में राजपूत समाज के गौरव को बनाए रखने के लिए आग में कूद कर सामूहिक आत्महत्या करना भी परार्थवादी आत्महत्या है। इसी प्रकार समुद्री जहाज का कैप्टन भी जहाज अगर डूबता है तो बचाव नाव आदि सामान उस जहाज में सवार लोगों को पहले देता है, चाहें वह स्वयं डूब जाए। अतः आप जान गए होंगे कि परार्थवादी आत्महत्या में सामूहिक हित बचाव के लिए स्वयं बलिदान अति महत्वपूर्ण है।

दुर्खीम ने परार्थवादी आत्महत्या की प्रकृति को और अधिक स्पष्ट करने के लिए इसके भी तीन प्रकारों का उल्लेख किया है-अनिवार्य परार्थवादी आत्महत्या, ऐच्छिक परार्थवादी आत्महत्या व उग्र परार्थवादी आत्महत्या। आइए यहां हम इनका संक्षेप में वर्णन करके समझें।

अनिवार्य परार्थवादी आत्महत्या में दुर्खीम कहता है कि इस प्रकार की आत्महत्या तब घटित होती है जबकि व्यक्ति और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध इतना घनिष्ठ हो जाता है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व समाज में विलीन हो जाता है, और व्यक्ति का अपना कोई प्रथक व्यक्तित्व नहीं रह जाता है और उसे समाज या समूह की इच्छानुसार ही कार्य करना पड़ता है। समाज या समूह उसे आत्महत्या करने को भी कह सकता है। जोकि उसे अनिवार्य रूप से करनी पड़ती है। इस प्रकार की आत्महत्याएं अत्यधिक संगठित समाजों में देखने को मिलती हैं। क्योंकि वहां व्यक्ति और समाज का घनिष्ठ संबंध देखने को मिलता है। उदाहरण के रूप में भारत में पाई जाने वाली पूर्व में सती प्रथा (पति की मृत्यु पर पत्नी द्वारा आत्महत्या) आदि इसी श्रेणी में आती है। दूसरी प्रकार की आत्महत्या ऐच्छिक परार्थवादी है। इसमें व्यक्ति आत्महत्या करने के लिए समाज द्वारा विवश नहीं किया जाता है अपितु आत्महत्या करना या न करना व्यक्ति की इच्छा पर भी काफी हद तक निर्भर करता है। और अधिक स्पष्ट रूप में ऐच्छिक परार्थवादी आत्महत्या में समाज औपचारिक रूप में व्यक्ति से आत्महत्या की मांग नहीं करता और न ही उसे ऐसा करने के लिए विवश या मजबूर करता है। लेकिन फिर भी कुछ विशेष परिस्थितियों में आत्महत्या करना जनमत की दृष्टि से या नैतिक दृष्टि से उचित मान लिया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐच्छिक परार्थवादी आत्महत्या के साथ एक सामाजिक प्रतिष्ठता जुड़ी होती है। जिसके कारण व्यक्ति आत्महत्या करने के लिए प्रोत्साहित होता रहता है। जैसे- यदि किसी व्यक्ति ने कोई ऐसा निन्दनीय कार्य कर दिया है, जिससे समूह या उसके परिवार का सर नीचा होता है तो वह व्यक्ति ऐसा अनुभव करने लगता है कि उसका परिवार या समूह उससे आत्महत्या की मांग कर रहा है। ऐसी अवस्था में वह यह सोचता है कि अगर वह आत्महत्या करता है तो उसके परिवार को उसके द्वारा किए गए कार्य से खोई हुई सामाजिक प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त हो जाएगी। और वह इस प्रकार की आत्महत्या का सहारा लेता है। इस प्रकार यहां आप जान गये होंगे कि ऐच्छिक आत्महत्या में व्यक्ति आत्महत्या करने के लिए समाज द्वारा विवश नहीं किया जाता, अपितु व्यक्ति अपने नैतिक कर्तव्य के रूप में ही आत्महत्या करता है।

तीसरे प्रकार अर्थात उग्र परार्थवादी आत्महत्या में दुर्खीम कहते हैं कि इस प्रकार की आत्महत्या न तो सामाजिक दबाव के कारण की जाती है न ही खोई हुई नैतिक या सामाजिक प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त करने के लिए की जाती है। इस

प्रकार की आत्महत्या में व्यक्ति बलिदान का सम्पूर्ण सुख या आनन्द प्राप्त करने के लिए अपने को मार ड़ालता है क्योंकि कोई विशेष कारण न होते हुए भी संसार से छुटकारा प्रशंसनीय माना जाता है। अर्थात इस प्रकार की आत्महत्या में व्यक्ति के जीवन का सार उद्देश्य यही होता है कि वह अपने आप को समाप्त कर दे। जैसे- हिन्दू जीवन में मोक्ष की धारणा ऐसी आत्महत्याओं को प्रेरित करती है। हिन्दू दर्शन के अनुसार एक हिन्दू को गृहस्थाश्रम के समस्त कर्तव्यों का पालन करते हुए पुत्र को जन्म देने के बाद एक निश्चित आयु में पहुंच जाने पर आने को समस्त सांसारिक बन्धनों व सुख-सुविधाओं से अलग कर लेना चाहिए और मोक्ष प्राप्त करने के लिए ईश्वर की जप-तप साधना में लगकर शरीर को धीरे-धीरे गलाना चाहिए। अतः आप यहां परिचित हो गये होंगे कि हिन्दू धर्म में व्यक्ति अनेक धर्मानुसार कर्तव्यों का पालन करते हुए स्वेच्छा से अपने शरीर को समाप्त कर देते हैं।

6.4.3 असामान्य (आदर्शहीन) आत्महत्या -

इस प्रकार की आत्महत्या में दुर्खीम कहते हैं कि असामान्य या आदर्शहीन आत्महत्या तब की जाती है जब व्यक्ति के जीवन में आकस्मिक उतार-चढ़ाव आते हैं, अत्यधिक निराशा व अचानक प्राप्त होने वाली खुशी की स्थिति में भी व्यक्ति आत्महत्या कर बैठता है। आत्महत्या का यह प्रकार समाज की उस दशा से सम्बन्धित है जिसे दुर्खीम ने 'विसंगति' अथवा अप्रतिमानता कहा है। विसंगति को परिभाषित करते हुए दुर्खीम लिखते हैं कि ''विसंगति आदर्श नियमों की समाप्ति की दशा है, एक सामान्य शून्यता है, नियमों का निलम्बन है तथा यह एक ऐसी स्थिति है जिसे हम अक्सर नियमविहीनता कहते हैं।'' इसका तात्पर्य है कि जब किन्हीं आकस्मिक दशाओं के फलस्वरूप समाज का संगठन या उसका नैतिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। और व्यक्ति इन बदली हुई दशाओं से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते हैं, तब यह दशा विसंगति की दशा होती है। अतः असामान्य आत्महत्या के उदाहरण के रूप में एकाएक दिवालिया हो जाने पर अथवा भारी लाटरी आ जाने पर अचानक अत्यधिक गम या खुशी होने पर व्यक्ति द्वारा आत्महत्या कर लेना अस्वाभाविक (आदर्शहीन) आत्महत्या है

दुर्खीम इस प्रकार की आत्महत्या को अस्वाभाविक इसलिए कहते हैं कि यह आत्महत्या न तो अहंवादी और न ही परार्थवादी आत्महत्या की प्रकृतिनुरूप होती है। इस प्रकार की आत्महत्या तो तब घटित होती है जब व्यक्ति के सामाजिक या सामूहिक जीवन में होने वाले आकस्मिक व अस्वाभाविक परिवर्तन उसके कष्टों में अत्यधिक वृद्धि करते हैं और इसके फलस्वरूप कष्ट असहनीय हो जाते हैं, और उनसे छुटकारा पाने के लिए वह आत्महत्या का सहारा लेता है। इस प्रकार कीउत्पत्तिके कारण ही दुर्खीम इसे असामान्य या अस्वाभाविक आत्महत्या की श्रेणी में इसे रखते हैं। अपने इस विचार के संदर्भ में दुर्खीम ने तीन प्रकार की अस्वाभाविक स्थितियों का वर्णन किया है- आर्थिक अस्वाभाविकता, यौन व पारिवारिक अस्वाभाविकता। आर्थिक अस्वाभाविकता, जिसमें दुर्भाग्यपूर्ण व सौभाग्यपूर्ण अर्थात दोनों ही प्रकार के संकट सम्मिलित होते हैं, ये आत्महत्या की दर को बढ़ाते हैं। दुर्भाग्यपूर्ण आर्थिक विपदा की स्थिति व्यक्तियों को एकाएक उनको पुरानी आर्थिक स्थिति की तुलना में बहुत नीचे लाकर खड़ा कर देती है। जिसमें लोगों को अपनी आवश्यकताओं को नियंत्रित या संतुलित करना आवश्यक हो जाता है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति इन परिस्थिति से अपना अनुकूलन शीघ्रता से नहीं कर पाता है। और यह परिस्थिति असहनीय

बनकर उसे आत्महत्या की ओर प्रवृत कर देती है। यौन अस्वाभाविकता में विवाह व्यक्ति के यौन सम्बन्धों का नियमन करता है। इसलिए वह आत्महत्या के विरूद्ध व्यक्ति की रक्षा करने में सहायता करता है। जबकि एक अविवाहित पुरूष/महिला को यह मानसिक सन्तुष्टि प्राप्त नहीं होती है। वह एकाधिक स्त्रियों/पुरूषों से यौन इच्छाओं की सन्तुष्टि प्राप्त करना चाह सकता है। और इस चाह में असफल होने पर आत्महत्या की ओर प्रेरित हो सकता है। तथा पारिवारिक अस्वाभाविकता में दुर्खीम के अनुसार पारिवारिक जीवन में पति या पत्नी की मृत्यु के फलस्वरूप या तलाक के कारण यह स्थिति उत्पन्न हो सकती है। परिवार में पति या पत्नी के मृत्यु के फलस्वरूप एक ऐसी समस्या उत्पन्न हो जाती है जिसकी जीवित पक्ष कल्पना नहीं कर पाता। और इन परिस्थिति में वह अनुकूलन करने में असमर्थ हो जाता है। जिसके परिणामस्वरूप वह इस आत्महत्या की ओर प्रेरित हो जाता है। इस प्रकार आप यहां समाज में आत्महत्या के प्रकारो को समझ गए होंगे। इन प्रकारों को निम्नांकित चित्र द्वारा भी प्रस्तुत किया गया है जोकि आपको समझने में सहायता मिलेगी।

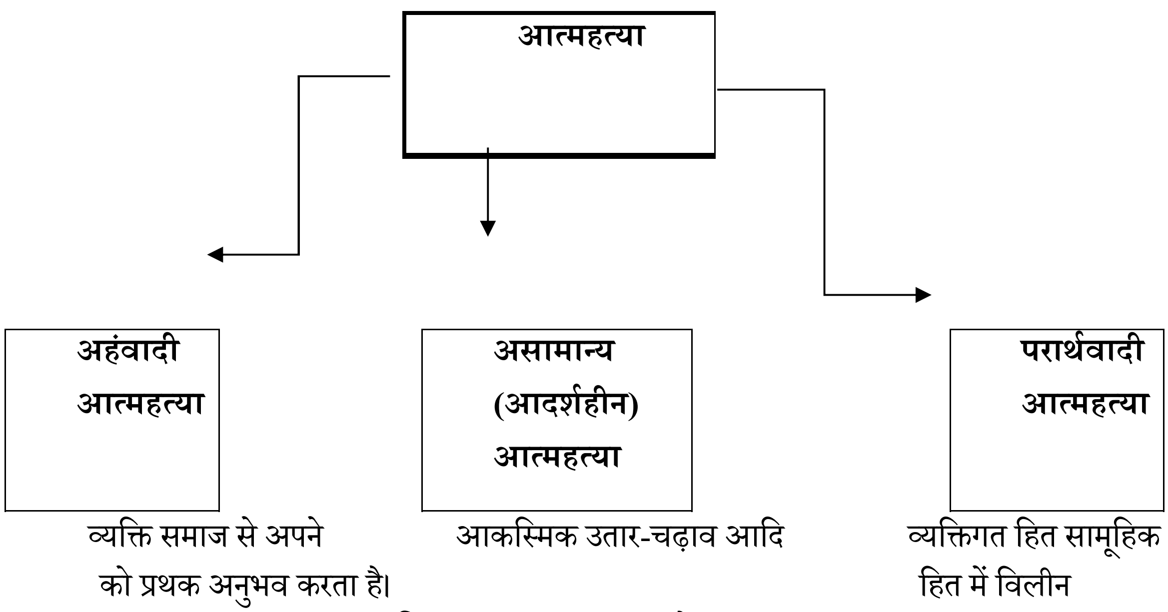

चित्र नं0-1: आत्महत्या के प्रकार

बोध प्रश्न-2

i) दुर्खीम ने आत्महत्या के तीन प्रमुख प्रकार कौन से बताए हैं?

....
....

....
....
....
..

ii) परार्थवादी आत्महत्या को संक्षिप्त में बताइए?

....
....
....
....
....
..

iii) परीक्षा में फेल होने पर छात्र द्वारा की जाने वाली आत्महत्या, किस आत्महत्या की श्रेणी में आएगी?

(अ) अहंवादी आत्महत्या

(ब) परार्थवादी आत्महत्या

(स) असामान्य आत्महत्या

iv) आधुनिक युग में किस प्रकार की आत्महत्या अधिक होती है?

....
....
....

6.5 सारांश

दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित आत्महत्या के सिद्धांत में बताया है कि आत्महत्या को पूर्व विचारों में एक व्यक्तिगत क्रिया माना जाता था जिसकी सांख्यिकीय आधार पर व्याख्या की जाती थी और इसके लिए शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता, गरीबी, प्रेम में निराशा आदि को उत्तरदायी ठहराया जाता था। लेकिन दुर्खीम के विचारों में इस बात को

स्वीकार नहीं किया और कहा गया कि आत्महत्या एक सामाजिक तथ्य और इसकी व्याख्या भी सामाजिक संदर्भ में की जानी चाहिए। यह व्यक्ति का निजी कार्य नहीं है, क्योंकि समाज या समूह ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करता है जिनसे विवश होकर ही व्यक्ति आत्महत्या करता है। जब सामूहिक जीवन में एकता का अभाव हो जाता है तब व्यक्ति असुरक्षित महसूस करता है। जिसके फलस्वरूप वह अपने को अकेला, अतृप्त, दुखी व चारों ओर से घिरा हुआ महसूस करता है तथा उसका सामूहिक जीवन नष्ट हो जाता है और वह सोचता है कि जीने से तो मरना अच्छा है, और जीवन से मुक्ति पाने के लिए वह आत्महत्या का सहारा लेता है। दुर्खीम ने आत्महत्या की समाज में प्रकृति को ध्यान में रखकर तीन प्रकार की आत्महत्या अर्थात अहंवादी, परार्थवादी व असामान्य (आदर्शहीन) आत्महत्या की व्याख्या समाज में उदाहरण देकर जैसे-सैनिकों द्वारा की जाने वाली आत्महत्या, गुस्से में आकर की जाने वाली आत्महत्या, जौहर, परीक्षा में फेल होने पर विद्यार्थी की आत्महत्या आदि की व्याख्या की। जिसे अनेक उदाहरण द्वारा समझाया उनके विचारानुसार सार यही है कि आत्महत्या एक सामाजिक तथ्य है जिसमें समाज ऐसी परिस्थितियां आदि घटित करता है कि व्यक्ति आत्महत्या का सहारा ले बैठता है इसलिए आत्महत्या की प्रकृति को समझने के लिए उसकी व्याख्या सामाजिक सन्दर्भ में की जानी चाहिए।

6.6 परिभाषिक शब्दावली

आत्महत्या- आत्महत्या शब्द का प्रयोग उन सभी मृत्युओं के लिए किया जाता है जोकि स्वयं मृत व्यक्ति के किसी सकारात्मक या नकारात्मक ऐसे कार्य के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम होते हैं जिनके बारे में वह व्यक्ति जानता है कि वह कार्य इसी परिणाम अर्थात मृत्यु को उत्पन्न करेगा।

अहंवादी आत्महत्या- अहंवादी आत्महत्या में व्यक्ति समाज से अपने को प्रथक अनुभव करता है। व्यक्ति अपने स्वार्थ में इतना डूब जाता है कि उसे ऐसा अनुभव होने लगता है कि सभी उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। वह अपने को कटा हुआ महसूस करने लगता है। जिसके परिणामस्वरूप उसके अहं को ठेस लगती है और वह अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देता है।

परार्थवादी आत्महत्या- यह अहंवादी आत्महत्या का विपरीत रूप है। परार्थवादी आत्महत्या में व्यक्ति समाज में अपने को बहुत घुला-मिला महसूस करता है, व्यक्तिगत हित सामूहिक हित में विलीन हो जाते हैं। व्यक्ति और समाज के बीच की दूरी समाप्त हो जाती है और सामूहिक हित से प्रेरित होकर वह अपने जीवन का बलिदान कर देता है। अतः परार्थवादी आत्महत्या तब घटित होती है जब समाज में अत्यधिक एकता व संगठन देखने को मिलता है और ऐसी स्थिति में समाज या समूह में आत्महत्या को एक कर्तव्य के रूप में स्वीकार किया जाता है, जैसे-सैनिकों द्वारा की जाने वाली आत्महत्या व जौहर आदि आत्महत्या इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती है।

असामान्य (आदर्शहीन) आत्महत्या - असामान्य या आदर्शहीन आत्महत्या तब की जाती है जब व्यक्ति के जीवन में आकस्मिक उतार-चढ़ाव आते हैं, अत्यधिक निराशा व अचानक प्राप्त होने वाली खुशी की स्थिति में भी व्यक्ति आत्महत्या कर बैठता है।

6.7 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

i) समाज को

ii) सामाजिक घटना

iii) आत्महत्या- आत्महत्या एक सामाजिक तथ्य है। ऐसी कोई मृत्यू जो आत्म विनाश के लिए जानबूझकर की गई किसी क्रिया का परिणाम है। अथवा उसकी ऐसी निष्क्रियता का परिणाम है जिसके भयंकर परिणामों के विषय में उसे पहले से ज्ञान हो, आत्महत्या की श्रेणी में आती है।

iv) द सूसाइड (The Suicide)-1897

बोध प्रश्न-2

i) (अ) अहंवादी आत्महत्या (ब) परार्थवादी आत्महत्या व (स) असामान्य (आदर्शहीन)आत्महत्या

ii) परार्थवादी आत्महत्या- इमाईल दुर्खीम द्वारा बताए गए आत्महत्या के तीन रूपों में से एक को परार्थवादी आत्महत्या कहा जाता है। आत्महत्या के इस रूप में एक व्यक्ति जो अपने समूह अथवा समाज में इतना घुल मिल जाता है कि वह समूह अथवा समाज के कल्याण अथवा् रक्षा के लिए अपने आप को न्यौछावर कर देता है। जैसे सैनिक द्वारा देश की रक्षा के लिए अपने आप को युद्ध में झोंक देना। परार्थवादी आत्महत्या समाज के लिए अपने जीवन को उत्सर्ग करने की इच्छा से प्रेरित होती है।

iii) (स) असामान्य आत्महत्या

iv) अहंवादी आत्महत्या

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Giddens, Anthony, (1978) *Durkheim,* Harvester press, Hassocks

Aron, Raymond, (1970) *Main currents in sociological thought,* vol.1 & 2, Penguin books, London

Bottomore, T.B., (1969) *Socioloogy: A guide to problem and literature,*

Allen and unvin, London
Durkheim, Emile, (1965) *TheSucidie,* Free press, Newyork

अब्राहिम, एम0 फ्रांसिन्स. ;1982द्ध मा ॅर्डन सोशियोलोजिकल थ्योरीः एन इन्ट्रोडक्शनए आ ॅक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेसए बम्बई

6.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

Jones, Robert Alun, (1986) Emile Durkheim- An Introduction to four Major Works, sage publications, Inc.: Beverly Hills

Coser, Lewis A, (1996) Masters of Sociological Thought, Rawat publication, Jaipur

Giddens, Anthony, (1993) Sociology, polity press, Cambridge

Mitchell, G Duncan, (1979) A New Dictionary of Sociology, Routledge & Kegan Paul, London

गुप्ता एवं शर्माए (2006) समाजशास्त्रए साहित्य भवन पब्लिकेशनए आगरा

सिहं जे0 पी0ए (2008) समाजशास्त्र-अवधारणाएं एवं सिद्धान्तए पीएचआई लर्निंग नई दिल्ली

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. समाजशास्त्र के लिए आत्महत्या सन्दर्भ में दुर्खीम के योगदान की विवेचना कीजिए।
2. आत्महत्या से आप क्या समझते हैं? आत्महत्या के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. समाज में आत्महत्या के लिए उत्तरदायी कारणों का सविस्तार उल्लेख कीजिए।

इकाई-7 धर्म का सिद्धांत

Theory of religion

इकाई की रूपरेखा

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 धर्म का सिद्धांत

7.2.1 धर्म की परिभाषा एवं अर्थ

7.2.2 धर्म की उत्पति के सिद्धांत

7.2.2.1 आत्मावाद

7.2.2.2 प्रकृतिवाद

7.2.2.3 टोटमवाद

7.3 धर्म के प्रकार्य

7.4 समालोचनात्मक मूल्यांकन

7.5 सारांश

7.6 पारिभाषिक शब्दावली

7.7 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

7.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

इस प्रस्तुत इकाई के प्रथम खण्ड़ में समाज में धर्म की अवधारणा एवं परिभाषा को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें बताया गया है कि दुर्खीम ने धर्म के दो पक्षों - वैचारिक एवं व्यावहारिक का उल्लेख किया है। जिसका उल्लेख दुर्खीम की धर्म की परिभाषा में मिलता हैं, कि ''धर्म पवित्र वस्तुओं ,अर्थात् पृथक् और निषिद्ध वस्तुओं से संबंधित विश्वासों और क्रियाओं की संगठित व्यवस्था है - विश्वास और क्रियाएं जो उन समस्त लोगों को चर्च नामक एक पृथक् नैतिक समुदाय के रूप में संगठित करते हैं जो उनका अनुसरण करते है।'' इसके तत्पश्चात धर्म की उत्पत्ति के सिद्धांन्त -आत्मावाद व प्रकृतिवाद के बारे सविस्तार बताया गया तथा दुर्खीम ने इन दोनों सिद्धांन्तों की आलोचना कर धर्म की उत्पत्ति के संदर्भ में धर्म के प्रारम्भिक स्वरूप टोटमवाद के बारे में बताया गया है। जिसमें उल्लेख किया गया कि टोटम से संबंधित विभिन्न धारणाओं, विश्वासों एंव संगठन को ही टोटमवाद कहा जाता है।

और इसी आधार पर दुर्खीम ने आस्टेªलिया की अरूण्टा जनजाति में टोटमवाद का अध्ययन किया और इसे धर्म की उत्पत्ति के संबंध में समाज में सविस्तार समझाया गया है। जिसमें दुर्खीम कहता है कि, ''धर्म का स्त्रोत स्वयं समाज है, धार्मिक विचार समाज की विशेषताओं के अतिरिक्त और कुछ नही। पवित्र अथवा ईश्वर केवल समाज का मानवीकरण है। और धर्म का सामाजिक कार्य समाजिक एकता की उत्पत्ति, वृद्धि और स्थिरता में है।'' और अन्त में समाज में धर्म के प्रकार्यां का उल्लेख किया गया है। जिसको पढकर आप समाज में धर्म के समाजिक प्रकार्यों को समझ सकगे।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके द्वारा संभव होगा-

☐ समाज में धर्म की अवधारणा को समझना,
☐ धार्मिक जीवन को वैचारिक जीवन में समझकर ज्ञान की सामाजिकता को स्पष्ट करना,
☐ धर्म के वैचारिक एवं व्यावहारिक पक्ष की चर्चा करना,
☐ समाज में धर्म की उत्पत्ति के सिद्धांन्त को बताना,
☐ समाज में धर्म के संदर्भ में टोटमवाद की व्याख्या करना,
☐ समाज व धर्म के सम्बन्ध को समझना,
☐ समाज में धर्म के प्रकार्य की व्याख्या दुर्खीम के अनुसार उल्लेख करना आदि।

7.2 धर्म का सिद्धांत

दुर्खीम केवल एक महान विचारक ही नहीं थे बल्कि वह गम्भीर और सफल शिक्षक भी थे। कठिन-से कठिन विषयों को भी सरल, तार्किक और आकर्षक ढंग से स्पष्ट करने की उनमें अपूर्व क्षमता थी। विभिन्न विषयों पर उनका भाषण बहुत प्रभावपूर्ण था। दुर्खीम के बारे में उनके एक विद्यार्थी ने टिप्पणी की। जिसका उल्लेख करते हुए हेरी एल्पर्ट **(Harry Alpert)** ने लिखा है, ''जो व्यक्ति उनके प्रभाव से बचना चाहते हैं, उन्हें या तो उनके पाठ्यक्रम से अलग होना पडेगा अथवा इच्छा या अनिच्छा से उनकी विद्वान को स्वीकार करना होगा।'' सच तो यह है कि दुर्खीम ने केवल विश्वविद्यालय के अन्दर ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण पेरिस के बौद्धिक जीवन में एक महत्वपूर्ण सफल भूमिका निभायी। जिस समय जर्मनी में मैक्स वेबर तथा इटली के परेटो भी धर्म और समाज के पारस्परिक संबन्धों का अध्ययन कर रहे थे लेकिन उसी समय दुर्खीम ने अपनी पुस्तक में धर्म की विवेचना बिल्कुल नए ढंग से प्रस्तुत की। जिसको आप आगे समझेगें।

दुर्खीम ने जनजातीय धर्म पर अध्ययन कर अनेक लेख लिखे तथा बाद में इन्हीं लेखां े पर आधारित उनकी अन्तिम महत्वपूर्ण पुस्तक सन् 197 में 'The Elementary Forms of Religious Life' धार्मिक जीवन के प्रारम्भिक स्वरूप) नाम से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में धर्म की प्रकृति, उत्पत्ति के कारण एवं प्रभाव आदि के विषय मे अत्यधिक विस्तृत तथा गहन व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इस पुस्तक को आज भी 'धर्म के समाजशास्त्र'

का प्रमुख आधार माना जाता है। जिसमें समाज एवं धर्म की व्याख्या की गई है। दुर्खीम ने जनजातीय धर्म को धार्मिक जीवन तथा उससे संबन्धित विभिन्न प्रकार के विश्वासों और अनुष्ठानों को धर्म का प्रारम्भिक स्वरूप माना है और इस पुस्तक में धर्म के प्रकार्यों की विस्तृत विवेचना की है। दुर्खीम ने धर्म सम्बन्धी सिद्धान्त के द्वारा यह प्रमाणित करने का प्रत्यन किया है कि धर्म सम्पूर्ण रूप से एक सामाजिक तथ्य या सामाजिक घटना है और वह इस अर्थ में कि नैतिक रूप से सामूहिक चेतना का प्रतीक ही धर्म है। इस सम्बन्ध मे दुर्खीम का अन्तिम निष्कर्ष यही है कि समाज ही वास्तविक देवता है।

दुर्खीम ने जितने भी समाजशास्त्रीय सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं, उनकी झलक 'धार्मिक जीवन के प्रारम्भिक स्वरूप' में देखी जा सकती है। इस ग्रन्थ के माध्यम से ही आपने 'धर्म के समाजशास्त्र' 'नैतिकता के समाजशास्त्र' और 'ज्ञान के समाजशास्त्र' की नींव रखी। इस ग्रन्थ के बारे में रेमण्ड ऐरन लिखते हैं, ''यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सर्वाधिक विस्तृत है, सर्वाधिक मौलिक है, मेरे विचार से यह ऐसी कृति भी है जिसमें दुर्खीम की प्रेरणा सर्वाधिक स्पष्ट होती है।'' धर्म के प्रारम्भिक स्वरूपों के अध्ययन के द्वारा दुर्खीम ऐतिहासिक विधि का प्रयोग करते है और सामाजिक घटनाओं के विश्लेषण के महत्व को प्रदर्शित करते हैं। इस विधि के द्वारा दुर्खीम ने धर्म की उत्पत्ति, रचना और प्रकृति को समझाने का प्रयत्न किया है। धर्म के प्रारम्भिक स्वरूपों का अध्ययन, धर्म के समाजशास्त्र की स्थापना के साथ-साथ ज्ञान और विचार के सामाजिक स्त्रोत की भी व्याख्या करता है। धार्मिक जीवन को वैचारिक जीवन के रूप में प्रस्तुत कर दुर्खीम ने ज्ञान की सामाजिकता को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इस प्रतिपादित सिद्धांत में दुर्खीम ने आदिम समाजों में प्रचलित धार्मिक विश्वासों और कृत्यों का विश्लेषण करके गोत्र एवं टोटम व्यवस्था को प्राचीन धार्मिक व्यवस्था का आधार बताया है। इसमें आपने आस्ट्रेलिया की अरूण्टा जनजाति में पायी जाने वाली टोटम व्यवस्था का उल्लेख किया है। इसी के साथ दुर्खीम ने अपने 'समूहवाद' एवं 'समाजशास्त्रवाद' का भी प्रयोग किया है।

दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित 'धर्म के प्रारम्भिक स्वरूप' नामक ग्रन्थ तीन भागों में विभक्त है- प्रथम भाग में कुल चार अध्याय हैं। पहले अध्याय में धर्म की परिभाषा दी गयी है। दूसरे तथा तीसरे अध्याय में धर्म के प्रचलित सिद्धान्त आत्मावाद और प्रकृतिवाद की आलोचना को बताया गया है तथा चतुर्थ अध्याय में टोटमवाद को धर्म के प्रारम्भिक स्वरूप में दर्शाया गया है। दूसरे भाग में कुल नौ अध्याय हैं जिनमें टोटम की अवधारणा, मनुष्य और पशु के रूप में टोटम, गोत्र समूह, टोटमवाद का सिद्धांत और उसकी शक्ति, आत्मा और प्रेतात्मा एवं देवताओं, आदि की व्याख्या की गयी है। इस भाग में टोटम से संबंधित विश्वासों और मान्यताओं की विस्तृत विवेचना की गयी है। तीसरे भाग में धार्मिक संस्कारों और अनुष्ठानों का वर्णन है। इस भाग में कुल पांच अध्याय है। जिनमें विरक्ति और निषेध, बलि, कर्तव्यबोध, पूर्वज-स्मृति, पवित्रता आदि से संबंधित विभिन्न प्रकार के संस्कारों, कृत्यों एवं अनुष्ठानों का उल्लेख है। इस सिद्धांत को पढ़ने के उपरान्त आपको समाज में धर्म से संबन्धित तथ्यों का विश्लेषण करने में मदद मिलेगी। आइए अब हम आगे धर्म की परिभाषा एवं अर्थ को जानने कर प्रयत्न करते है।

7.2.1 धर्म की परिभाषा एवं अर्थ

दुर्खीम धर्म की अपनी परिभाषा देने से पूर्व धर्म के बारे में प्रचलित परिभाषाओं का खण्डन करते हैं। कुछ विद्वान जैसे रेविल धर्म में दैवीय तत्व को आवश्यक मानते है। वे धर्म को मानव मस्तिष्क को दैवीय मस्तिष्क से जोड़ने वाला तत्व मानते है। लेकिन दुर्खीम कहते हैं कि ऐसे कई समाज हैं जिनसे आत्मा और देवता का कोई स्थान नहीं है। जैसे- बौद्ध एवं जैन धर्म ऐसे ही धर्म हैं जिनमें किसी भी देवता की कल्पना नहीं की गयी है। दोनों ही धर्म नास्तिक धर्म हैं। प्रचलित परिभाषाओं की आलोचना के बाद दुर्खीम ने धर्म को परिभाषित कर लिखा हैं, कि ''धर्म पवित्र वस्तुओं ,अर्थात् पृथक् और निषिद्ध वस्तुओं से संबंधित विश्वासों और क्रियाओं की संगठित व्यवस्था है - विश्वास और क्रियाएं जो उन समस्त लोगों को चर्च नामक एक पृथक् नैतिक समुदाय के रूप में संगठित करते हैं जो उनका अनुसरण करते है।'' धर्म की इस परिभाषा में दुर्खीम ने धर्म के दो पक्षों -वैचारिक एवं व्यावहारिक का उल्लेख किया है। विचार के रूप में धर्म विश्वासों का संकल्प है और व्यावहारिक रूप में इसमें अनेक प्रकार के कृत्य, संस्कार और अनुष्ठान सम्मिलित हैं। प्रथम विचार की अवस्था है और प्रतिनिधित्वों से निर्मित होती है और दूसरी क्रिया करने की निर्धारित विधियां हैं। संस्कार विश्वास का क्रियात्मक पक्ष है।

विश्वासों की व्याख्या करते हुए दुर्खीम कहते हैं कि विश्व के समस्त धार्मिक विश्वास जगत कर वास्तविक और आदर्शात्मक वस्तुओं को दो भागों में विभाजित करते है- पवित्र और अपवित्र। विश्वास प्रतिनिधानों की वह व्यवस्था है जो पवित्र वस्तुओं की प्रकृति को व्यक्त करती है। पवित्र वस्तुओं में देवताओं, आध्यात्मिक शक्तियों या आत्माओं के अतिरिक्त गिरि -कन्दरा, वृक्ष, पत्थर, जलस्त्रोत, नदी, आदि भी सम्मिलित हो सकते है। संस्कार स्वयं भी एक पवित्र क्रिया होते हैं। अपवित्र वस्तुओं की तुलना में पवित्र वस्तुएं अधिक शक्ति और शान रखती है। पवित्र वस्तुएं मनुष्य की श्रद्धा और आस्था का केन्द्र होती है। मनुष्य सदैव उनके सामने नतमस्तक होता है, सहायता के लिए याचना करता है। विश्वासों और संस्कारो कें अतिरिक्त दूर्खीम ने धर्म की एक तीसरी विशेषता चर्च का भी उल्लेख किया है। जिसके आधार पर धर्म और जादू को अलग किया जाता है। धर्म और जादू में दुर्खीम ने अनेक भेद दर्शाए हैं। धर्म एक सामुहिक तथ्य है। जबकि जादू एक व्यक्तिगत तथ्य है। जादू का कोई चर्च नहीं होता है। अतः आप यहा समाज में धर्म को परिभाषित करना व उसके अर्थ को समझना जान गये होगें। जो निम्न चित्र में भी दर्शाया गया है-

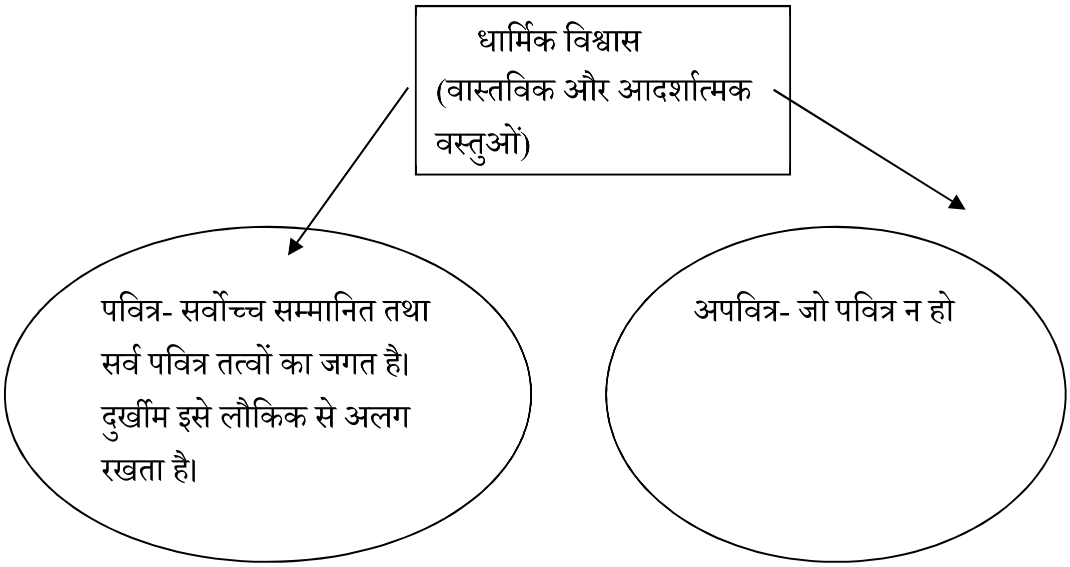

बोध प्रश्न-1

i) धर्म से संबधित सिद्धांत दुर्खीम ने किस पुस्तक में प्रतिपादित किया ?

....
....
....
....

ii) दुर्खीम ने अपने प्रतिपादित सिद्धांत में आदिम समाजों में प्राचीन धार्मिक व्यवस्था का आधार किसे बताया है ?

....
....
....
....
....

iii) दुर्खीम ने अपने प्रतिपादित सिद्धांत में आॅस्ट्रेलिया की किस जनजाति का अध्ययन किया है ?

....
....
....

....
....

iv) दुर्खीम के अनुसार प्रत्येक धर्म में पाये जाने वाले समान तत्व है ?

....
....
....
....
....

सत्य/असत्य बताइए ?

v) अपवित्र वस्तुओं की तुलना में पवित्र वस्तुएं अधिक शक्ति और शान रखती है। पवित्र वस्तुएं मनुष्य की श्रद्धा और आस्था का केन्द्र होती है।

....
....
....
....
....

vi) ''धर्म पवित्र वस्तुओं ,अर्थात् पृथक् और निषिद्ध वस्तुओं से संबंधित विश्वासों और क्रियाओं की संगठित व्यवस्था है - विश्वास और क्रियाएं जो उन समस्त लोगों को चर्च नामक एक पृथक् नैतिक समुदाय के रूप में संगठित करते हैं जो उनका अनुसरण करते है।'' धर्म की यह परिभाषा किसने दी है ?

अ) मैलिनोवस्की
ब) रेविल
स) दुर्खीम
द) उपरोक्त में से कोई नही।

7.2.2 धर्म की उत्पत्ति के सिद्धांत

दुर्खीम ने धर्म के सम्बन्ध में अपने सिद्धांत का प्रतिपादन करने से पूर्व समाज में प्रचलित दो सिद्धांत आत्मावाद और प्रकृतिवाद की आलोचना की है। आइए अब हम यहा आत्मावाद व प्रकृतिवाद सिद्धांत को भी समझने का प्रयत्न करते है-

7.2.2.1 आत्मावाद -

समाज में धर्म से संबन्धित आत्मावाद सिद्धांत के प्रतिपादक एडवर्ड टायलर हैं। टायलर ने जीववाद के सिद्धांत में आत्मा के विचार पर बल दिया है। टायलर धर्म की उत्पत्ति के लिए आत्मा के विचार को उत्तर दायी मानते हैं। वे कहते है कि आत्मा का ज्ञान मनुष्य को जाग्रत और सुषुप्त दो अवस्थाओं के कारण हुआ है। आदि मानव ने देखा कि जब वह सोता है तो वह कई ऐसे स्थानों पर चला जाता है अथवा ऐसे लोगों से मिलता है जिनकी सम्भावना जाग्रत अवस्था में उसे नही होती है। इसी प्रकार का अनुभव मनुष्य को जीवन और मृत्यु की घटनाओं से भी होता है। मरने पर शरीर से कोई वस्तु निकलकर चली जाती है, उसके बाद मनुष्य का खाना, पीना, हिलना-डुलना सब बन्द हो जाता है, सुषुप्त अवस्था में भी ऐसा ही होता है किन्तु जागने पर मनुष्य पुनः क्रियाशील हो जाता है। इन दोनो अवस्थाओं से आदिमानव को आत्मा का विचार उत्पन्न हुआ है। ये आत्माएं छोटी और बड़ी अर्थात सभी प्रकार की होती हैं, ये शक्तिशाली होती है। मरने के बाद मनुष्य की आत्माएं, प्रेतात्माएं या अध्यात्मिक शक्तियां बन जाती हैं ये प्रेतात्माएं ही बाद में देवताओं के रूप में मानी जाने लगती है। उनमें विशेष शक्तियां होती है। जिनकी मनुष्य पूजा करने लगता है। इस प्रकार प्रेतात्माओं की पूजा से एवं मृतक पूजा के रूप में आदिम धर्म अर्थात आत्मवाद का उदय हुआ है। यही टायलर का आत्मवाद / जीववाद का सिद्धांत है। किन्तु दुर्खीम आत्मवाद के इस सिद्धान्त को पूर्णरूप से स्वीकार नहीं करते हैं।

7.2.2.2 प्रकृतिवाद -

धर्म की उत्पत्ति के बारे में मैक्स मूलर ने प्रकृतिवाद को जन्म दिया है। प्रकृतिवाद का सिद्धांत धर्म की उत्पत्ति प्रकृति से बताता है। इनके अनुसार धर्म की उत्पत्ति प्राकृतिक शक्तियों के भय के कारण हुई है। वे कहते हैं कि धर्म का प्रारम्भिक स्वरूप प्रकृति पूजा और प्राकृतिक वस्तुओं जैसे चांद, सूरज, तारे, बिजली, पानी, हवा, अग्नि आदि की पूजा करना रहा है। इनकी मान्यता थी कि विशाल प्राकृतिक वस्तुओं को देखकर लोोगों में अनंत की भावना पैदा होती थी कि जिससे ये वस्तुएं लोगो के लिए अनंत का प्रतीक बन गई। मनुष्य ने प्राकृतिक शक्तियों का नामकरण भी उनकी प्रत्यक्ष क्रिया के आधार पर किया है। आदिम मानव ने प्राकृतिक वस्तुओं के पीछे देवताओं और आध्यात्मिक शक्तियों की कल्पना की। और बाद में इन प्रतीकों का देवताओं के रूप में अवतार हो गया। उसने सोचा कि ऐसी कोई-न-कोई शक्ति है जो इन सब का संचालन व नियमन करती है। इस प्रकार मैक्स मूलर प्रकृति पूजा में ही धर्म की उत्पत्ति खोजते हैं किन्तु दुर्खीम इस सिद्धांत को अस्वीकार करते हैं। आपका कहना है कि आत्मवाद और प्रकृतिवाद दोनों में ही धर्म की उत्पत्ति के सामाजिक कारकों की अवहेलना की गई है।

7.2.2.3 टोटमवाद -

अब हम यहा दुर्खीम के टोटमवाद के सिद्धांत को समझते है- दुर्खीम ने उन विद्धानों की आलोचना कि जो धर्म की व्याख्या व्यक्ति के मनोविज्ञान के संदर्भ में करते है। यदि धर्म किसी भ्रम या माया की उपज है तो वह इतने

लम्बे समय तक जीवित कैसे रहा और सारे संसार में इसका अस्तित्व क्यों है तथा मैक्समूलर के प्रकृतिवाद को दुर्खीम शब्दों का आडम्बर और रूपक अलंकारों का खेल मात्र मानता है। क्योंकि अनेक आदिम समुदाय तथाकथित महत्वपूर्ण प्राकृतिक शक्तियों- आकाश, सूर्य, चन्द्रमा आदि को नियमित रूप से घटने वाली चीज मानते है। दुर्खीम कहता है कि धर्म के आदिरूप टोटमवाद में तों केवल सामान्य जीवों की पूजा की जाती थी जैसे- खरगोश, मेंढक आदि मामूली प्राणियों को पूजा जाता था, जो न तो भयकारी थे और न ही रहस्यपूर्ण थे। अतः दुर्खीम ने दोनो सिद्धांतो का खण्डन करते हुये धर्म के महत्व को सामाजिक संदर्भ में खोजा है। दुर्खीम ने टोटमवाद को ही धर्म का प्रारम्भिक स्वरूप माना है। टोटमवाद को इसलिए चुना क्योंकि क्योंकि धर्म के रूप की दृष्टि से यह सबसे प्राचीन था और टोटमवाद की विशेषताएं अपने आप में अलग थी जिससे टोटमवादी रीति रिवाजों से पवित्र और लौकिक का अंतर उपजा था और यह संगठन दृष्टि से भी सरल था।

दुर्खीम ने आस्ट्रेलिया की अरूण्टा जनजाति में टोटमवाद का अध्ययन कर धर्म की उत्पत्ति को स्पष्ट किया है। टोटम क्या है? इसे स्पष्ट करते हुए दुर्खीम लिखते हैं कि टोटम एक नाम भी है, और एक प्रतीक या चिन्ह भी है। नाम के रूप में टोटम किसी गोत्र समूह से सम्बन्धित वस्तु है। गोत्र समूह का नाम है। अक्सर टोटम एक पशु या पक्षी हो सकता है या किसी प्रकार की वनस्पति या ऐसा पूर्वज जिससे समुदाय विशेष की उत्पत्ति मानी जाती है। टोटम पवित्र होता है और इसे विशेष सम्मान दिया जाता है। समुचित विधि विधान/ अनुष्ठान के बिना टोटम से संपक करना असंभव है। टोटम सामूहिक रूप में कुल की अस्मिता के प्रतीक के रूप में काम करता है। कुल का टोटम ही उसके सदस्यों का टोटम होेता है। टोटम के पवित्र जगत के विपरीत लौकिक जगत होता है। पवित्र व लौकिक के बीच पूर्ण विभेद है। पवित्र व लौकिक का विभाजन सभी धर्मों में विधमान हैं।

आस्ट्रेलिया की जनजाति में प्रत्येक गोत्र का एक टोटम होता है और टोटम के आधार पर ही गोत्र का नामकरण होता है। एक जनजाति के दो गोत्रों का एक ही टोटम नहीं हो सकता। एक टोटम को मानने वालों में परस्पर नातेदारी एवं रक्त के सम्बन्ध होते हैं, वे अपनी उत्पत्ति उस टोटम से मानते हैं, अतः वे परस्पर भाई बहिन समझे जाते हैं इसलिए वे आपस में विवाह नहीं करते। इस प्रकार दुर्खीम टोटमवाद को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- टोटमवाद नैतिक कर्तव्यों और मौलिक विश्वासों का वह समूह है जिनके द्वारा हम समाज पशु पौधे, तथा अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के बीच एक पवित्र और अलौकिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। आदिवासी यह मानते हैं कि टोटम में अलौकिक शक्ति का निवास है जो उनके सामाजिक जीवन को नियंत्रित करती है।

दुर्खीम ने टोटम की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया है-

- प्रत्येक गोत्र का एक टोटम होता है जिसके साथ गोत्र के सभी सदस्य अपना पवित्र और अलौकिक सम्बन्ध मानते हैं।
- गोत्र का नाम उसके टोटम के आधार पर होता है। साथ ही वह गोत्र का परिचय चिन्ह भी होता है।
- टोटम कोई पेड़ पौधा, पशु पक्षी और निर्जीव तथा अलौकिक वस्तु जैसे- सूर्य, चन्द्र, आदि हो सकते हैं।
- टोटम की प्रकृति धार्मिक है। टोटम के आधार पर ही वस्तुओं को पवित्र और अपवित्र समझा जाता है। टोटम स्वयं पवित्र वस्तु है, वह पवित्रता का केंद्र है।

□ गोत्र के सदस्य यह विश्वास करते हैं कि टोटम संकट के समय उनकी रक्षा करता है। वह भविष्यवाणियां करता है, चेतावनियां देता है, वह स्वप्न में आकर कोई बात कह सकता है।

□ टोटम सामूहिक प्रतिनिधित्व का प्रतीक है। टोटम के प्रचलित विश्वासों के बाद दुर्खीम इन विश्वासों की उत्पत्ति पर प्रकाश ड़ालते हैं

दुर्खीम टोटमवाद को धर्म की उत्पत्ति का आधार एवं सामूहिक प्रतिनिधित्व का प्रतीक मानते हैं। दुर्खीम का मत है, कि धार्मिक विचारों की उत्पत्ति सामूहिक एकीकरण के संवेगात्मक अवसरों पर होती है। वे यह मानते हैं कि समस्त सामाजिक तत्व का उद्गम मनुष्यों का पारस्परिक सम्पर्क है।

धर्म मुख्यतयाः सामाजिक है जिसे दुर्खीम ने अरूण्टा जनजाति का उदाहरण देकर स्पष्ट किया हैं। अरूण्टा जनजाति आस्ट्रेलिया की आदिम जनजाति है। अरूण्टा जनजाति कुलों में बँटी हुई है। एक नाम वाले लोगों के समूह को कुल कहते है। अरूण्टा जनजाति के कुलों में सदस्यता रक्त सम्बन्धों पर आधारित नहीं होती है तथा कुलों का नाम उनके टोटम के आधार पर होता है। टोटम एक प्रतीक चिन्ह है, पवित्र वस्तु है। लकडी के टुकडों तथा पालिश किये गये पत्थरों पर टोटम का चिन्ह उत्कीर्ण किया जाता है। जिससे वह पवित्र बन जाता है तथा उसे चुरिगा कहा जाता है। चुरिगा से धार्मिक भाव उत्पन्न होते है। जिस स्थान पर चुरिगा को रखा जाता है वह एर्तनातुलुगां कहलाता है। यह शान्तिस्थल माना जाता है। अनुष्ठान करने वालों को चुरिगा से शक्ति प्राप्त होती है, चुरिगा पूर्वज का शरीर तथा आत्मा है।

दुर्खीम ने अरूण्टा में मनाए जाने वाले कोरोबारी उत्सव के आधार पर सामूहिक एकत्रीकरण द्वारा धार्मिक विचारों की उत्पत्ति को स्पष्ट किया है।

कोरोबारी के अवसर पर मनुष्य उत्साह और आनन्द से भर जाते हैं, वे आनन्दतिरेक में अपने पर नियन्त्रण नहीं रख पाते। यदि कोई दुःखद बात होती है तो वे पागलों की भांति चक्कर काटते हैं, चिल्लाते हैं, धूल में लोटते हैं। दुर्खीम ने आदिवासियों के उत्सव और सामूहिक मिलन के अवसर पर होने वाले उत्तेजक क्रियाकलापों का बहुत ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। सामूहिक एकीकरण स्वयं एक शक्तिशाली उत्तेजना है। जब वे परस्पर निकट आते हैं तो एक ऐसी बिजली सी उत्पन्न होती है जो उन्हें आनन्द के आकाश में उड़ा ले जाती है। प्रत्येक व्यक्ति में सुझाव-ग्रहणशीलता बढ़ जाती है, प्रत्येक मन एक-दूसरे से प्रतिध्वनित होता है। संवेग की तीव्रता में चारों ओर अनियंत्रित हाव-भाव, शोर-शराबा और चीख-पुकार की ध्वनियां सक्रिय हो जाती है। सामूहिक भावना सामूहिक क्रियाओं को जन्म देती है। सामूहिक जीवन के इस उफान में व्यक्ति अपने को भूल जाता है। वह ऐसा अनुभव करता है, मानो वह एक नया प्राणी है जो एक विचित्र संसार में भ्रमण कर रहा है। उन उत्सवों में आदिम लोगों को एक पृथक संसार में जीवन बिताने की अनुभूति होती है। पृथक् संसार के क्रियाकलापों में ही धार्मिक विश्वासों और विचारों का जन्म होता है। दुर्खीम के ही शब्दों में, ‘‘अतः यह प्रतीत होता है कि इन उद्वेलित सामाजिक परिस्थितियों के बीच और स्वयं इस उफान में से धार्मिक विचार जन्म लेता है।

दुर्खीम ने अरूण्टा जनजाति के सामाजिक जीवन के निम्न दो पक्षों का उल्लेख किया है-

1. सांसारिक या धर्म-निरपेक्ष- यह मनुष्यों के सामान्य व्यावसायिक जीवन से सम्बन्धित है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने सामान्य स्वभाव के अनुसार दैनिक जीवन में आर्थिक क्रियाओं में लगा रहता है। इस स्थिति में व्यक्तियों का जीवन सामान्य, स्थिर, निस्तेज और प्रायः निष्क्रिय रहता है। लोगों में कोई उत्साह दिखाई नहीं देता। दुर्खीम इसे जीवन का अपवित्र पक्ष अथवा् सांसारिक, लौकिक या वैयक्तिक पक्ष कहते हैं।

2. धार्मिक एवं पवित्र पक्ष- इस पक्ष की अभिव्यक्ति उत्सवों, आदि के अवसर पर होती है जब लोग एकत्रित होते हैं। इस समय समूह के लोगों में विशेष उत्साह, प्रेरणा और सक्रियता पाई जाती है। सामूहिक जोश में व्यक्ति अपने निजीपन को भूलकर सामूहिक सत्ता में घुल-मिल जाता है। उसकी अच्छी और बुरी सभी क्रियाएं सामूहिक प्रेरणा द्वारा संचालित होती हैं। सामूहिक शक्ति में विश्वास करने से व्यक्ति अपने को सुरक्षित महसूस करता है। समूह जिस कार्य को स्वीकृति दे देता है चाहे वह वह पवित्र हो या अपवित्र अथवा निषिद्ध, सभी धार्मिक व पवित्र समझे जाते हैं।

इस प्रकार दुर्खीम धर्म की उत्पत्ति सामूहिक उत्तेजना और जीवन में ढूंढते हैं। धर्म एक सामूहिक आदर्श है। टोटम अलौकिक या ईश्वरीय शक्ति का प्रतीक है, टोटम गोत्र है, अतः ईश्वरीय गोत्र है। गोत्र मानव समूह है अतः समूह ही ईश्वर है। दुर्खीम के ही शब्दों में, ''धर्म का स्रोत स्वयं समाज है, धार्मिक विश्वास केवल मात्र समाज की विशेषताओं के प्रतीक है। पवित्र अथवा ईश्वर केवल समाज का मानवीकरण है, और धर्म का सामाजिक कार्य समाज में सामाजिक एकता की उत्पत्ति करना, वृद्धि करना और स्थायित्व लाना है।''

इसप्रकार दुर्खीम समाज को ही ईश्वर मानता है। ईश्वर ही भांति समाज भी नैतिक शक्ति रखता है, और सदस्यों को आत्मबलिदान के लिए प्रेरित कर सकता है। धर्म एकत्रित समूह में जन्म लेता है। समाज का विचार धर्म की आत्मा है। धर्म की उत्पत्ति समाज में हुई है न कि आत्मा परमात्मा के विचारों अथवा प्रकृति के भय से हुई है। धर्म का सामाजिक कार्य व्यक्ति को परस्पर नजदीक लाना एवं उन्हें एक सूत्र में बाँधकर सामाजिक एकता लाना है। अतः आप उपरोक्त वर्णन से भलीभाँति दुर्खीम के धर्म के सिद्धांत को समझ गये होगें।

चित्र-धर्म की उत्पत्ति के सिद्धांत

धर्म की उत्पत्ति के सिद्धांत

आत्मावाद– एडवर्ड टायलर ने जीववाद के सिद्धांत में आत्मा के विचार पर बल दिया है।

प्रकृतिवाद - मैक्स मूलर ने प्रकृतिवाद के सिद्धांत में धर्म की उत्पत्ति प्रकृति से बताया है।

टोटमवाद- दुर्खीम ने आस्ट्रेलिया की अरूण्टा जनजाति में टोटमवाद का अध्ययन कर धर्म की उत्पत्ति को स्पष्ट किया है। जिसमें ऐतिहासिक विधि का प्रयोग किया, उन्होने समस्त वस्तुओं को दो भागों में बांटा- पवित्र व अपवित्र। पवित्र वस्तुओं का संबध धर्म से होता है। वे धर्म की उत्पत्ति सामुहिक उत्तेजना व वातावरण में ढूढते हैं। उनके अनुसार, धर्म का प्रमुख कार्य समूह और समाज में एकता और अनुशासन बनाए रखना है। जिससे कि सामाजिक जीवन सुचारू रूप से चलता रहे।

7.3 धर्म के प्रकार्य

दुर्खीम के अनुसार धार्मिक तत्वों का दो मूलभूत श्रेणियों में विभाजन- विश्वास एवं अनुष्ठान वैसा ही है जैसा सोचने मे करने में है। इस प्रकार चितंन के आधार पर बोधपरक व करने के आधार पर सामाजिक प्रकार्यो के संदर्भ में धर्म की चर्चा की गई है। दोनों के आधार पर कुछ प्रकार्यो की चर्चा की गई है, जो कि निम्न है-

दुर्खीम ने धर्म के निम्नांकित प्रकार्यों का उल्लेख किया है-

1. धर्म ही समाज के लोगों को सामूहिक जीवन में भाग लेने तथा अनुशासन में रहने की प्रेरणा देता है।
2. धर्म सामाजिक एकता को बनाए रखता है। क्योंकि जो लोग एक धर्म तथा धर्म से सम्बन्धित संस्कारों, विश्वासों एवं कृतियों में विश्वास करते हैं, उनमें हम की एवं एकता की भावना पाई जाती है।

3. धर्म ही समूह को पुनर्जीवन प्रदान करता है। समय-समय पर धार्मिक उत्सवों को मनाने से समाज का विचार व्यक्ति के मन में गहरा पैठ जाता है।

4. धर्म व्यक्ति के जीवन में समाज की उपयोगिता को सिद्ध करता है।

5. धर्म संवेगों और भावनाओं को सन्तुलित रखता है, वह वर्तमान को अतीत से तथा व्यक्ति को समूह से जोड़ता है। आदि है, लेकिन सभी प्रकार्यों का उददेश्य समाज में सामाजिक एकता की उत्पत्ति करना,वृद्धि करना और स्थायित्व लाना है।

7.4 **समालोचनात्मक मूल्यांकन**

दुर्खीम के धर्म सम्बन्धी विचारों पर अनेक विद्वानों ने अपनी आलोचनाएं एवं राय प्रस्तुत की हैं। जिसमें रेमण्ड ऐरन, सोरोकिन, बोगार्डस, बीरस्टीड, आदि प्रमुख हैं तथा साथ ही इवान्स प्रिचार्ड ने भी दुर्खीम के सिद्धांत की आलोचना की है, जो कि निम्न है-

□इवान्स प्रिचार्ड यह आवश्यक नही है कि हर समाज में पवित्र व लौकिक में सामाजिक कार्यकलापों के क्षेत्र का बँटवारा होता है, ये सदैव एक दूसरे के विरोधी हो ऐसा भी जरूरी नही है। क्योंकि श्रीलंका के वेड्डा समुदाय तथा मलेनेशियाई लोगो में पवित्र व लौकिक में बँटवारा होता हो ऐसा कोई अस्तित्व प्रतीत नहीं होता है। यह अनिवार्य नही कि टोटमवाद कुल का धर्म हो। दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों के कारणों को सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत किया और अपनी बात का खण्डन करते हुये कहा कि ऐसे समुदाय द्धारा संपन्न किये गये अनुष्ठानों में पैदा सामूहिक संवेग से धर्म की उत्पत्ति होती है। यहा ध्यान देने योग्य है कि दुर्खीम सामाजिक के स्थान पर संवेगात्मक पहलू पर अधिक जोर दे रहा है।

□रिमण्ड ऐरन ने दुर्खीम की इस बात की आलोचना की है कि उसने समाज को एक सार्वभौमिक अमूर्त तथ्य के रूप में मान्यता देने के बजाय समाजों के आधार पर धर्म की व्याख्या की है।

□बीरस्टीड ने दुर्खीम द्वारा टोटमवाद की व्याख्या को अनावश्यक रूप से उलझी हुई और विस्तृत बताया है। वे लिखते हैं, ''यह अनेक पृष्ठों तक चलता है, जिनमें से कुछ, यह स्वीकार करना चाहिए, विश्वास और विचार के संस्कार और अनुष्ठान के विस्तृत विवरण के कारण बोझिल हो गए हैं।''

□बार्नेस का मत है कि धर्म के बारे में दुर्खीम की कई मान्यताएं निराधार हैं। ईश्वर और समाज एक नहीं है और सामूहिक क्रियाएं केवल सम्पर्क की घनिष्ठता और घनत्व के बढ़ने से पवित्रता को जन्म नहीं दे सकती।

□सोरोकिन का मत है कि दुर्खीम ने धर्म की उत्पत्ति में सामाजिक सम्पर्क को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया है। और प्राणिशास्त्रीय कारकों की अवहेलना की है। सामाजिक सम्पर्क मनुष्य की विशिष्ट शारीरिक रचना का ही परिणाम है।

विभिन्न विद्धानों द्धारा आलोचनाओं के बावजूद भी दुर्खीम का यह कार्य उनकी समाजशास्त्रीय मान्यताओं का विशद विवेचन है। धर्म की व्याख्या में उनका समूहवादी दृष्टिकोण समक्ष आया है। धर्म की व्याख्या के अन्तर्गत आपने ज्ञान, विचार, नैतिकता, सामाजिक मूल्य, आदि विभिन्न बौद्धिक और आध्यात्मिक पक्षों को

सामाजिक धरातल पर समझाने का प्रयत्न किया है। जो कि समाजशास्त्रीय जगत में धर्म को समझने के लिए अनुपम देन है।

बोध प्रश्न-2

i) धर्म की उत्पत्ति के टोटमवाद सिद्धांत से कौन विद्धान संबधित है **?**

....
....
....

ii) निम्नलिखित कौन सिद्धांत किससे सुमेलित है**,** सुमेलित कीजिए।

(अ) प्रकृतिवाद दुर्खीम
(ब) टोटमवाद मैक्समूलर
(स) आत्मावाद एडवर्ड टायलर

iii) सत्य/असत्य बताइये।

(अ) जीववाद के सिद्धांत में आत्मा के विचार पर बल किसने दिया है **?** (मैक्समूलर)
(ब) धर्म की उत्पत्ति के बारे में मैक्स मूलर ने प्रकृतिवाद को जन्म दिया है।
(स) दुर्खीम ने टोटमवाद को ही धर्म का प्रारम्भिक स्वरूप माना है।

iv) यह कथन किसका है- ''धर्म का स्त्रोत स्वयं समाज है **?**

....
....
....

v) दुर्खीम ने धर्म की व्याख्या के लिए टोटमवाद को क्यों चुना **?**

....
....
....
....
....
....
....
....

....

....

vi) दुर्खीम द्धारा टोटम की कोई दो विशेषताओं का उल्लेख किजिए।

....

....

....

....

....

....

....

…..

....

vii) दुर्खीम द्धारा धर्म के कोई दो प्रकार्यो का उल्लेख किजिए।

....

....

....

....

....

....

....

…..

....

viii) कोरोबारी उत्सव किस जनजाति में मनाया जाता है **?**

....

....

....

....

....

....

ix) टोटमवाद पर संक्षिप्त टिप्पणी दो लाईन में लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....

x) दुर्खीम के अनुसार पवित्र व टोटम क्या है **?**

....
....
....
....
....
....
....

7.5 **सारांश**

इस प्रस्तुत इकाई में दुर्खीम ने धर्म के सिद्धान्त के बारे में बताया है। जिसका उल्लेख उनकी कृति The Elementary Forms of Religious Life'में किया है। दुर्खीम ने इस कृति के सिद्धान्तो में ऐतिहासिक विधि का प्रयोग किया और धर्म की उत्पत्ति, रचना, प्रकृति व समाज आदि का उल्लेख किया है। जिसमें दुर्खीम ने अपने धर्म व समाज से संबधित विचारों में टायलर, मैक्समूलर आदि के सिद्धान्तो को अस्वीकार किया और कहा कि धर्म एक समाजिक घटना या तथ्य है। इसलिए इसकी उत्पत्ति समाज में ढूंढी जानी चाहिए। धर्म की उत्पत्ति के संदर्भ में उसने आस्टेªलिया की अरूण्टा जनजाति का अध्य यन किया। उसमें प्रचलित टोटम की अवधारणा के आधार पर धर्म की व्याख्या की। दुर्खीम ने धर्म के अध्ययन के लिए टोटमवाद को चुना है क्योंकि धर्म के रूप की दृष्टि से यह सबसे प्राचीन था और टोटमवाद की विशेषताएं अपने आप में अलग थी। उन्होने समस्त वस्तुओं को दो भागों में बांटा- पवित्र व अपवित्र, और बताया कि पवित्र वस्तुओं का संबध धर्म से होता है। वे धर्म की उत्पत्ति सामुहिक उत्तेजना व वातावरण में ढूढते हैं। उनके अनुसार, धर्म का स्त्रोत स्वयं समाज है। ईश्वर समाज का मानवीकरण है और समाज स्वयं ईश्वर है। धर्म का प्रमुख कार्य समूह और समाज में एकता और अनुशासन बनाए रखना है। जिससे कि सामाजिक जीवन सुचारू रूप से चलता रहे।

7.6 पारिभाषिक शब्दावली

धर्म - धर्म पवित्र वस्तुओं से संबधित विश्वासों और क्रियाओं की संगठित व्यवस्था है।

वैचारिक पक्ष - विचार के रूप में धर्म विश्वासों का संकलन है। जो कि प्रतिनिधियों से निर्मित होती है।

व्यावहारिक पक्ष - व्यावहारिक रूप में इसमें अनेक प्रकार के कृत्य, संस्कार और अनुष्ठान सम्मिलित होते हैं। संस्कार विश्वास का क्रियात्मक पक्ष है।

अलौकिक अथवा दैविक - प्राकृतिक शक्तियों के परे कुछ अदृश्य शक्तियां जिनका संभवत मानव जीवन पर प्रभाव पड़ता है।

जीववाद - इस शब्द का प्रयोग धार्मिक तत्वो की प्रकृति की व्याख्या के संदर्भ में हुआ है। टायलर ने जीववाद के अनुसार धर्म का उद्भव इस विश्वास से जुडा है कि सभी निर्जीव वस्तुओं और प्राकृतिक तत्वों का आध्यात्मिक रूप आत्मा होता है। इसी कारण आदिम जाति के लोगों को कुछ विशिष्ट अनुभव होते है जिनके कारण उन्हे भय या आश्चर्य की अनुभूति होती है।

आत्मवाद - आत्मवाद के प्रतिपादक टायलर हैं, जिसमें वे धर्म की उत्पति आत्मा के विचार को मानते हैं।

प्रकृतिवाद - इसके प्रतिपादक मैक्समूलर हैं, जिसमें वे धर्म का प्रारम्भिक स्वरूप प्रकृति पूजा और प्राकृतिक वस्तुओं को मानते हैं।

टोटमवाद - दुर्खीम ने टोटमवाद को धर्म का प्रारम्भिक स्वरूप माना है। टोटम डाक नाम भी है और एक प्रतीक चिन्हंन आदि भी। टोटम से संबधित विभिन्न धारणाओं, विश्वासों एंव संगठन को ही टोटमवाद कहा जाता है।

पवित्र- सर्वोच्च सम्मानित तथा सर्व पवित्र तत्वों का जगत है। दुर्खीम इसे लौकिक से अलग रखता है।

टोटम - किसी जानवर या पक्षी का लकडी अथवा पत्थर का प्रतिरूप जिसे पूरे जन समुदाय विशेष का पौराणिक पूर्वज माना जाता हैं।

निषेध- किसी वस्तु को देखने, छूने या उसके संपर्क में आने पर प्रतिबंध होना।

7.7 **अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर**

बोध प्रश्न-1

i) ष्ज्ीम म्सम उमदजंतल थ्वतउे व ित्मसपहपवने स्पमिष्

ii) गोत्र एवं टोटम व्यवस्था को

iii) आस्ट्रेलिया की अरूण्टा जनजाति का अध्ययन किया है।

iv) विश्वास और अनुष्ठान का

v) सत्य

vi) दुर्खीम

बोध प्रश्न-2

i) दुर्खीम

ii) सुमेलित-

(अ) प्रकृतिवाद - मैक्समूलर

(ब) टोटमवाद - दुर्खीम

(स) आत्मावाद - एडवर्ड टायलर

iii) (अ) असत्य

(ब) सत्य

(स) सत्य

iv) दुर्खीम

v) दुर्खीम ने धर्म की व्याख्या के लिए टोटमवाद को इसलिए चुना क्योंकि धर्म के रूप की दृष्टि से यह सबसे प्राचीन था और टोटमवाद की विशेषताएं अपने आप में अलग थी जिससे टोटमवादी रीति रिवाजों से पवित्र और लौकिक का अंतर उपजा था और यह संगठन दृष्टि से भी सरल था।

vi) **1-**टोटम की प्रकृति धार्मिक है। टोटम के आधार पर ही वस्तुओं को पवित्र और अपवित्र समझा जाता है। टोटम स्वयं पवित्र वस्तु है, वह पवित्रता का केंद्र है।

2-प्रत्येक गोत्र का एक टोटम होता है जिसके साथ गोत्र के सभी सदस्य अपना पवित्र और अलौकिक सम्बन्ध मानते हैं। टोटम कोई पेड़ पौधा, पशु पक्षी और निर्जीव तथा अलौकिक वस्तु जैसे- सूर्य, चन्द्र, आदि हो सकते हैं।

vii) दुर्खीम द्धारा धर्म के कोई दो प्रकार्यो निम्न है-

1-धर्म संवेगों और भावनाओं को सन्तुलित रखता है, वह वर्तमान को अतीत से तथा व्यक्ति को समूह से जोड़ता है। आदि है, लेकिन सभी प्रकार्यों का उददेश्य समाज में सामाजिक एकता की उत्पत्ति करना, वृद्धि करना और स्थायित्व लाना है।

2-धर्म ही समाज के लोगों को सामूहिक जीवन में भाग लेने तथा अनुशासन में रहने की प्रेरणा देता है।

viii) आस्ट्रेलिया की अरूण्टा जनजाति में

ix) **टोटमवाद -** दुर्खीम ने टोटमवाद को धर्म का प्रारम्भिक स्वरूप माना है। टोटम डाक नाम भी है और एक प्रतीक चिन्हंन आदि भी। टोटम से संबधित विभिन्न धारणाओं, विश्वासों एंव संगठन को ही टोटमवाद कहा जाता है।

x) पवित्र- सर्वोच्च सम्मानित तथा सर्व पवित्र तत्वों का जगत है। दुर्खीम इसे लौकिक से अलग रखता है।

xi) टोटम - किसी जानवर या पक्षी का लकडी अथवा पत्थर का प्रतिरूप जिसे पूरे जन समुदाय विशेष का पौराणिक पूर्वज माना जाता हैं।

7.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Giddens, Anthony, (1978) *Durkheim,* Harvester press, Hassocks

Aron, Raymond, (1970) *Main currents in sociological thought,* vol.1 & 2, Penguin books, London

Bottomore, T.B., (1969) *Socioloogy: A guide to problem and literature,* Allen and unvin, London

Durkheim, Emile, (1964) *The elementary forms of religious life,* Free press, Newyork

मजूमदार, डी0एन0 और मदान, टी0एन0, (1986) एन इंट्रोडक्शन टू सोशल एन्थरोपालाजी नेशनल पब्लिशिंग हाउसए नई दिल्ली

गुप्ता एवं शर्माए (2006) समाजशास्त्रए साहित्य भवन पब्लिकेशनए आगरा

वर्मा, ओमप्रकाश, (1984) दुर्खीम एक अध्ययन, विवके प्रकाशन, दिल्ली

7.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Jones, Robert Alun, (1986) *Emile Durkheim- An Introduction to four Major Works,* sage publications, Inc.: Beverly Hills

Coser, Lewis A, (1996) *Masters of Sociological Thought,* Rawat publication, Jaipur

Giddens, Anthony, (1993) *Sociology,* polity press, Cambridge

Mitchell, G Duncan, (1979) *A New Dictionary of Sociology,* Routledge & Kegan Paul, London

सिहं जे0 पी0ए (2008) समाजशास्त्र-अवधारणाएं एवं सिद्धान्तए पीएचआई लर्निग नई दिल्ली

पिकरिंग डब्लयू0 एस0एफ0ए (1993) दर्खाइमस् सोशियोलोजि आफ रिलिजनए रटजन एंड केगन पालए लंदन

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित समाज में धर्म के सिद्धांत की विवेचना कीजिए।

2. धर्म क्या है? टोटमवाद की सविस्तार व्याख्या कीजिए।

3. धर्म की उत्पति के सिद्धांतो का वर्णन कीजिए।

4. समाज में धर्म के प्रकार्यो का सैद्वान्तिक वर्णन कीजिए।

इकाई-8 श्रम विभाजन का सिद्धांत

Theory of division of labor

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 समाज में श्रम विभाजन

8.2.1 श्रम विभाजन के प्रकार्य

8.2.2 सामाजिक एकता: यान्त्रिक एकता एवं सावयवी एकता

8.2.3 दमनकारी कानून एवं प्रतिकारी कानून

8.3 श्रम विभाजन के कारण एवं परिणाम

8.4 श्रम विभाजन के असामान्य स्वरुप

8.5 सारांश

8.6 पारिभाषिक शब्दावली

8.7 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्त र

8.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.7 निबंधात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

इस प्रस्तुत इकाई में दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित 'समाज में श्रम विभाजन' सिद्धांत से संबंधित विचारों का उल्लेख विस्तारपूर्वक किया गया है। इसमें बताया गया है कि समाजशास्त्रीय चिन्तक दुर्खीम ने अपनी डाक्टरेट उपाधि के लिए सर्वप्रथम इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया। यह ग्रन्थ तीन खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में समाज में श्रम

विभाजन के प्रकार्य, सामाजिक एकता में यांत्रिक एकता व सावयवी एकता के उल्लेख के साथ दमनकारी कानून व प्रतिकारी कानून को बताया गया है। दुसरे खण्ड, जिसमें बताया गया है कि समाज में जनसंख्या के आकार व घनत्व में वृद्धि के कारण व उत्पन्न उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज में परिवर्तन किस प्रकार हुआ व उन परिवर्तनों में श्रम विभाजन व विशेषीकरण कैसे पनपा साथ ही श्रम विभाजन के सामाजिक परिणामों की चर्चा की गई है। तीसरे खण्ड में श्रम विभाजन के असामान्य स्वरूप-आदर्शहीन श्रम विभाजन, बलात श्रम विभाजन तथा व्यक्तिगत कार्य की अपर्याप्तता वाला श्रम विभाजन के बारे में जानकारी दी गई है।

अंततः इस इकाई की विषय वस्तु पूर्ण रूप से दुर्खीम के सिद्धांत समाज में श्रम विभाजन पर केन्द्रित है कि किस प्रकार समाज में श्रम विभाजन व विशेषीकरण आदि हुआ। इस इकाई को अध्ययन करने के उपरान्त आप आदिम/प्राचीन समाज से आधुनिक समाज में किस प्रकार श्रम विभाजन हुआ आदि को आप बता सकते हैं।

8.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई अध्ययन के बाद आपके द्वारा संभव होगा-

1. दुर्खीम के सिद्धांत-समाज में श्रम विभाजन की व्याख्या करना,
2. श्रम विभाजन के समाज में प्रकार्यों को बताना,
3. आदिम/प्राचीन समाज में यांत्रिक एकता एवं दमनकारी कानून को वर्णित करना,
4. आधुनिक समाजों में सावयवी एकता एवं प्रतिकारी कानून को वर्णित करना,
5. जनसंख्या आकार व घनत्व वृद्धि से सामाजिक परिवर्तन द्वारा श्रम विभाजन विशेषीकरण को समझाना,
6. श्रम विभाजन के कारण एवं परिणामों को स्पष्टतः समझना, तथा
7. आप बता सकेंगे कि समाज में श्रम विभाजन के असामान्य स्वरूप आदि क्या है।

8.2 समाज में श्रम विभाजन

दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों में समाज में श्रम विभाजन का सिद्धांत प्रमुख है। इनसे पहले स्मिथ, स्पेंसर, मिल आदि विद्वानों ने श्रम विभाजन की व्याख्या आर्थिक आधार पर की थी लेकिन दुर्खीम ने श्रम विभाजन की व्याख्या सामाजिक आधार पर प्रस्तुत की। दुर्खीम ने अपनी डाक्टरेट उपाधि के लिए अपने सर्वप्रथम ग्रन्थ का प्रकाशन सन् 1893 में किया। जिसका विषय ''समाज में श्रम विभाजन'' है। जिसे अंग्रेजी में "The Division of Labour

in Society" व फ्रेंच भाषा में "De La Division du Travail Social" नाम से प्रकाशित हुआ है। इस प्रतिपादित पुस्तक में दुर्खीम ने श्रम विभाजन का विस्तार से उल्लेख किया है। इनकी यह पुस्तक ''तीन खण्डों'' में विभाजित है। सम्पूर्ण पुस्तक में चैदह अध्याय हैं। तीन प्रमुख खण्ड निम्न हैं।

1. श्रम विभाजन के प्रकार्य
2. श्रम विभाजन के कारण एवं दशाएं
3. श्रम विभाजन के असामान्य स्वरूप

दुर्खीम ने श्रम विभाजन के प्रकार्य के अन्तर्गत सामाजिक एकता के लिए श्रम विभाजन को आधार माना है। साथ ही उसके वैज्ञानिक अध्ययनों के लिए कानूनों के स्वरूप, मानवीय सम्बन्धों व एकता के स्वरूप, अपराध व दण्ड आदि अनेक समस्याओं व अवधारणाओं की व्याख्या की है। दूसरे खण्ड में श्रम विभाजन के जनित कारण जनसंख्या के आकार एवं घनत्व में वृद्धि एवं सामूहिक चेतना का ह्रास आदि व उनकी दशाओं आदि का सविस्तार उल्लेख किया है। तथा अन्तिम खण्ड श्रम विभाजन के असामान्य स्वरूप -आदर्शहीन श्रम विभाजन, बलात्श्रम विभाजन व व्यक्तिगत कार्य की अपर्याप्तता आदि का उल्लेख किया है। यहां पर हम सबसे पहले श्रम विभाजन के प्रकार्य को जानेंगे।

8.2.1 श्रम विभाजन के प्रकार्य

दुर्खीम के अनुसार समाज एक नैतिक वास्तविकता है। क्योंकि नैतिक व्यवस्था के अभाव में कोई भी सामाजिक व्यवस्था ज्यादा समय तक नहीं चल पाती है। नैतिकता के व्यवहार वे नियम हैं जो मानव के आचरण पर अनिवार्य रूप से लागू होते हैं और उनके साथ सामूहिक अभिमति जुड़ी होती है। श्रम विभाजन की प्रकृति नैतिक है जिसका सम्बन्ध मानव आचरण से है। इसलिए श्रम विभाजन का प्रकार्य समाज में नैतिक कार्यों को उत्पन्न करना है। दुर्खीम कहते हैं कि श्रम विभाजन एक सामाजिक तथ्य है। सर्वप्रथम दुर्खीम ने प्रकार्य का अर्थ बतलाया- प्रकार्य का अर्थ क्रिया से है तथा क्रिया द्वारा पूर्ण होने वाली आवश्यकता से है। दुर्खीम ने प्रकार्य शब्द का प्रयोग क्रिया द्वारा पूर्ण होने वाली आवश्यकता के सन्दर्भ में किया है। स्वयं दुर्खीम के अनुसार ''श्रम विभाजन के प्रकार्य से तात्पर्य है कि श्रम विभाजन की प्रक्रिया समाज के जीवन के लिए कौन सी मौलिक आवश्यकता की पूर्ति करती है, अर्थात प्रकार्य का अर्थ परिणाम या प्रभाव से नहीं अपितु उसकी भूमिका से है।''

कुछ विद्वान श्रम विभाजन को सभ्यता का स्रोत मानते हैं लेकिन दुर्खीम कहते हैं कि श्रम विभाजन का प्रकार्य सभ्यता का विकास करना नहीं है क्योंकि स्रोत का अर्थ प्रकार्य से नहीं है। भौतिक प्रगति आदि श्रम विभाजन के परिणामस्वरूप होती है। इसलिए ये परिणाम है प्रकार्य नहीं। दुर्खीम ने सभ्यता के विकास में तीन प्रकार के विकास बतलाए हैं- आर्थिक, कलात्मक एवं वैज्ञानिक विकास। लेकिन तीनों का सम्बन्ध नैतिक विकास नहीं है। दुर्खीम

(1893:51) स्वयं लिखते हैं कि, ''नैतिकता सबसे कम अपरिहार्य, अत्यन्त आवश्यक है, नित्य का भोजन है जिसके बिना समाज जीवित नहीं रह सकता है।''

श्रम विभाजन का प्रकार्य नवीन समूहों का निर्माण व उनकी एकता है। इसकी पुष्टि के लिए दुर्खीम कहते हैं कि श्रम विभाजन का प्रकार्य समाज के अस्तित्व से सम्बन्धित किसी नैतिकता की पूर्ति करना है। जब किसी समाज की जनसंख्या बढ़ती है तो उनके पारस्परिक सम्बन्धों में भी वृद्धि होती है व मानवीय आवश्यकताओं की विभिन्नता बढ़ती है। जिसके फलस्वरूप समाज में नई आवश्यकताएं पनपती हैं। जिनकी पूर्ति के लिए समाज में श्रम विभाजन में वृद्धि होती है, नये व्यावसायिक व सामाजिक समूह जन्म लेते हैं। इन विभिन्न समूहों के बीच एकता उत्पन्न करना समाज के अस्तित्व के लिए आवश्यक बन जाती है। जिसके अभाव में व्यवस्था व सन्तुलन नहीं हो पाता है। अतः यहां स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न समूहों के बीच एकता की आवश्यकता एक नैतिक आवश्यकता है तथा श्रम विभाजन का कार्य इसी नैतिक आवश्यकता की पूर्ति करना है। इस प्रकार यहां स्पष्ट हो जाता है कि श्रम विभाजन का प्रकार्य नवीन समूहों का निर्माण और उनकी एकता बनाए रखना है। इसे हम यहां एक उदाहरण से समझ सकते हैं कि हम केवल उन लोगों से ही मित्रता नहीं करते हैं जो हमारे से समानता रखते हैं अपितु उनसे भी रखते हैं जो हमारे से भिन्नता रखते हैं क्योंकि जिस बात की कमी का अनुभव करते है उसकी पूर्ति हम अपने मित्र में ढूंढते हैं इस प्रकार विवाहित एकता एवं स्त्री-पुरूष की एकता को भी श्रम विभाजन के द्वारा समझाया कि उनकी एकता इसलिए है कि उनमें वैचारिक एवं भावात्मक समानता ही नहीं अपितु उनमें पायी जाने वाली भिन्नता भी है। अर्थात लैंगिक श्रम विभाजन ही स्त्री-पुरूष की एकता का प्रमुख स्रोत हैं, क्योंकि स्त्रियों का कार्य रागात्मक व पुरूषों का बौद्धिक है और श्रम विभाजन एक-दूसरे को संबंधित करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि समानता और भिन्नता दोनों ही आकर्षण का कारण हो सकते हैं। अतः स्पष्ट आप यहा समक्ष गए होंगे कि श्रम विभाजन का प्रमुख कार्य समाज में एकता स्थापित करना है।

दुर्खीम ने कहा कि वैधानिक कानून के आधार पर हम किसी समाज की एकता को समझ सकते हैं। वैधानिक कानून समूह के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रकट करते हैं। इस आधार पर दुर्खीम ने प्रमुख रूप से दो प्रकार के कानूनों का उल्लेख अपने अध्ययन में किया है। जिसका वर्णन आगे किया गया है।

8.2.2 सामाजिक एकता: यांत्रिक एकता एवं सावयवी एकता

दुर्खीम के अनुसार -सामाजिक एकता एक नैतिक घटना है। यह समाज के नैतिक आदर्शों में निहित है। यह कोई मूर्त वस्तु नहीं है वरन् समाज के सदस्यों की मानसिक स्थिति में निवास करती है। यह सामुहिक चेतना की अभिव्यक्ति है। समाज के लोगों में जितना अधिक लगाव एवं निकटता की भावना होगी, समाज में उतनी ही मात्रा में एकता पायी जायेगी। किसी भी समूह का विकास उसकी एकता या सुदृढ़ता में निहित होता है। यह एकता सर्वोच्च एकता है तथा व्यक्ति इसी एकता के अंग हैं। व्यक्तियों एवं समाज में पायी जाने वाली समानता व भिन्नता दोनों ही समाज

में एकता को उत्पन्न करते हैं। समान शारीरिक एवं मानसिक अवस्थाएं लोगों को एकीकरण की तरफ आकर्षित करते हैं। और यह आकर्षण केवल समानता में ही नहीं, अपितु भिन्नता में भी पाया जाता है। जैसे- स्त्री व पुरूष में आकर्षण आदि। इसी प्रकार से कार्यों की भिन्नता जिसे हम श्रमविभाजन कहते हैं, भी समाज में लोगों को निकट आने एवं मिलकर कार्य करने के लिए बाध्य करती है। अतः स्पष्ट है कि श्रम विभाजन के द्वारा सामाजिक एकता को समाज में इसके विभिन्न रूपों में समझा जा सकता है।

इसी आधार पर समाज में दुर्खीम के अनुसार दो प्रकार की एकता पायी जाती है।-

1. यांत्रिक एकता।
2. सावयवी एकता।

उपर्युक्त लिखित एकता का उल्लेख निम्न प्रकार से है-

यांत्रिक एकता (Mechanical Solidarity)–

यांत्रिक एकता, सरल, आदिम व प्राचीन समाजों की प्रमुख विशेषता है। सरल, आदिम व प्राचीन समाजों में जनसंख्या का आकार कम था उन समाजों में संगठन छोटे आकार का होता था तथा जनसंख्या कम होने के कारण उनकी आवश्यकताएं अधिकांश समान व कम थी अर्थात गिनी-चुनी थी। उनके सामाजिक व आर्थिक कार्य, जीवन के ढंग, आचार-विचार आदि में भिन्नता ज्यादा नहीं थी। इन समाजों के लोगों पर परम्परा, धर्म व जनमत आदि का प्रभाव व उनका दबाव ज्यादा था और लोग आंख मूंदकर इनका पालन करते थे। जिससे व्यक्ति का व्यक्तित्व समूह के व्यक्तित्व में घुल मिल जाता था। वह समूह के साथ यन्त्रवत, सोचते हैं, कार्य करते हैं एवं आज्ञाओं का पालन करते हैं। इस प्रकार के समाज में ऐसे आचरण से स्थापित एकता को दुर्खीम ने 'यांत्रिक एकता' कहा है। जिसमें दमनकारी कानून पाया जाता है जिसका वर्णन आगे है। वर्तमान में विश्व में जो भी जनजातियों परम्परागत जीवन व्यतीत कर रही हैं उनमें आज भी यांत्रिक एकता का स्वरूप देखा जा सकता है। आइए अब हम यांत्रिक एकता वाले समाज की कुछ विशेषताओं का उल्लेख करते हैं-

1. समरूप व्यक्तियों का समाज
2. व्यक्ति का द्वैतीयक स्थान
3. सामूहिक चेतना का प्रभुत्व
4. सजातीयता
5. आर्थिक एवं धार्मिक संगठन
6. दमनकारी सामाजिक नियन्त्रण आदि हैं।

सावयवी एकता (Organic Solidarity)–

दुर्खीम के अनुसार सावयवी एकता आधुनिक समाज, जटिल, विकसित व औद्योगीकृत समाजों की विशेषता है। यह यांत्रिक एकता के बिल्कुल विपरीत है। आइए अब हम यहां इसे समझते हैं। दुर्खीम कहता है कि जब समाज में जनसंख्या के आकार व घनत्व में वृद्धि होती है तो उस समाज में रहने वाले व्यक्तियों की आवश्यकता में भी वृद्धि होती जाती है। जिसके परिणामस्वरूप श्रम विभाजन पनपता है। श्रम विभाजन ही समाज में नवीन वर्गों को जन्म देता है। तथा उसमें पारस्परिक निर्भरता उत्पन्न करता है। श्रम विभाजन से ही समाज में विशेषीकरण उत्पन्न होता है। अर्थात जनसंख्या के आकार के बढ़ने के फलस्वरूप समाज में लोगों की आवश्यकताएं जैसे-जैसे बढ़ती जाती हैं, उसी प्रकार कार्यों का विशेषीकरण होकर उनकी पूर्ति होती रहती है। और प्रत्येक कार्य का विशेषीकरण होकर उनमें पारस्परिक निर्भरता आपस में बढ़ जाती है। जिसके परिणामस्वरूप आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है, और साथ ही उस समय समाज में एक प्रकार की एकता पायी जाती है। जिसमें समाज के सदस्य बंधे रहते हैं। दुर्खीम इस एकता को 'सावयवी एकता' का नाम देते हैं। क्योंकि ऐसे समय में प्राचीन समाजों की भांति व्यक्तिगत समानता के आधार पर सामाजिक एकता को बनाए रखना संभव नहीं हुआ। इस प्रकार सरल समाजों से आधुनिक समाजों में किस प्रकार यांत्रिक एकता सावयवी एकता में परिवर्तित हो जाती है। अतः आप यहां इस प्रकार की एकता से परिचित हो गये होंगे। आइए अब हम यह जाने कि दुर्खीम ने इस प्रकार की एकता को सावयवी एकता क्यों कहा? इसलिए कहा कि यह एकता प्राणी के शरीर में पायी जाने वाली एकता से मिलती जुलती हैं शरीर में आंख केवल आंख का काम करती है। हाथ केवल हाथ का, पैर केवल पैर का, ऐसा नहीं है कि आंख हाथ का कार्य व पैर आंख का काम करे। अर्थात स्पष्ट है कि शरीर के विभिन्न भागों में श्रम विभाजन और विशेषीकरण है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि ये एक-दूसरे से संबन्धित नहीं है। वास्तव में ये एक-दूसरे से संबन्धित व निर्भरित हैं। इसी प्रकार आधुनिक युग में सामाजिक श्रम विभाजन और विशेषीकरण के फलस्वरूप भी प्रत्येक व्यक्ति का एक विशेष प्रकार का कार्य, व्यक्तित्व व अनुभव है, लेकिन अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे अन्य लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है। अतः स्पष्ट आप यहां जान गये होंगे कि आधुनिक समाज में श्रम विभाजन व विशेषीकरण होते हुए भी व्यक्ति और व्यक्ति में, व्यक्ति और समूह में, समूह और समूह में एक पारस्परिक सम्बन्ध और निर्भरता एवं एकता पाई जाती है। जिसे दुर्खीम सावयवी एकता कहता है। जो कि आगे चित्र नं0-1 द्धारा समझाया गया है। ऐसे समाज में प्रतिकारी कानून समाज में श्रम विभाजन व व्यवस्था को बनाए रखने के लिए कार्य करता है। आप यहा समाज में एकता व संबिन्धत कानून से भली भाति परिचित हो गए होंगे। आइए अब हम दमनकारी व प्रतिकारी कानून को समाज संदर्भ में जाने । समाज में दो प्रकार के कानून -दमनकारी कानून व प्रतिकारी कानून दुर्खीम के अनुसार पाये जाते हैं। जिनकी चर्चा आगे है।

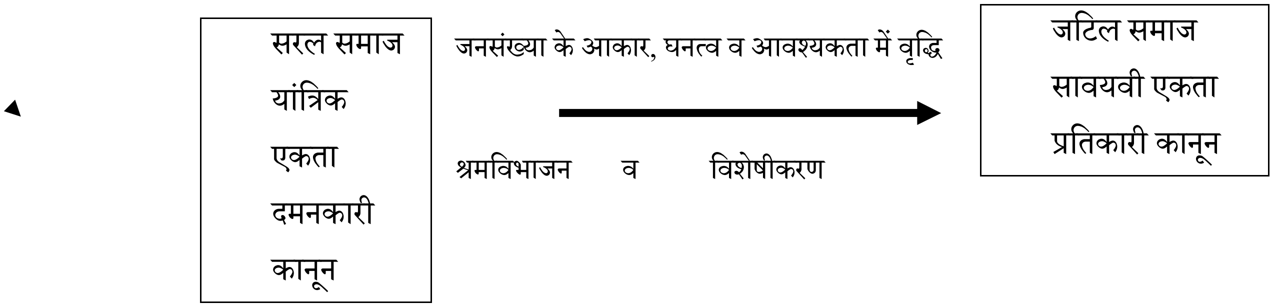

चित्र नं0 1- सरल समाज व जटिल समाज में सामाजिक एकता

बोध प्रश्न-1

i) दुर्खीम ने अपनी डाक्टरेट उपाधि के लिए सर्वप्रथम किस ग्रन्थ की रचना की।

(अ) The Sucidie

(ब) The Division of labour in society

(स) The Rules of sociological method

(द) The Elementary forms of religious life

ii) दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित पुस्तक "The Division of labour in society" कितने खण्ड है।

(अ) तीन खण्ड

(ब) चार खण्ड

(स) पांच खण्ड

(द) सात खण्ड

iii) यांत्रिक एकता किस प्रकार के समाज की प्रमुख विशेषता है।

(अ) सरल/आदिम व प्राचीन समाज

(ब) आधुनिक/जटिल व विकसित समाज

(स) (अ) व (ब) दोनों

(द) उपयुक्त में से कोई नहीं

8.2.3 दमनकारी एवं प्रतिकारी कानून

दुर्खीम के अनुसार समाज में दो प्रकार के कानून -दमनकारी कानून एवं प्रतिकारी कानून पाये जाते हैं। जिनकी विवरण निम्न है-

दमनकारी कानून ((**Repressive law**)–

दमनकारी कानून यांत्रिक एकता की अवस्था वाले समाज में होता है, जबकि प्रतिकारी कानून सावयवी एकता की अवस्था वाले समाज में पाया जाता है। दमनकारी कानून 'सार्वजनिक कानून' होते हैं जो व्यक्ति एवं राज्य के सम्बन्धों का नियमन करते हैं। इनमें व्यक्ति के बजाय सामूहिक हितों को अधिक महत्व दिया जाता है। दमनकारी कानून का प्रचलन आदिम समाजों में होता है जहां सामूहिक चेतना के विरूद्ध कार्य समझे जाते हैं। जो व्यक्ति सामूहिक चेतना का उल्लंघन करते हैं उन्हें दण्ड दिया जाता है। इस दण्ड का उद्देश्य समाज में नैतिक सन्तुलन को बनाए रखना होता है।

प्रतिकारी कानून (**Restitutive law**)–

प्रतिकारी कानून आधुनिक समाजों की विशेषता है। इन कानूनों का उद्देश्य व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों में उत्पन्न असन्तुलन में सामान्य स्थिति पैदा करना होता है। क्योंकि समाज के विकास के साथ-साथ श्रम विभाजन पनपा, जिससे आदिम समाजों में पायी जाने वाली एकरूपता नष्ट हो गई तथा समाज में भिन्नताएं बहती चली गयी और व्यैक्तिक स्वतंत्रता का महत्व बढ़ता चला गया। जिसकी परिणति इस रूप में हुई कि अपराध को अब समस्त समाज के विरूद्ध कार्य या सामूहिक इच्छा या उल्लंघन न समझकर व्यक्ति के विरूद्ध कार्य समझा जाने लगा। जिसके फलस्वरूप कानून का स्वरूप दमनकारी से प्रतिकारी कानून में परिवर्तन हो गया। इस कानून के अंतर्गत दीवानी कानून, व्यावसायिक कानून, संवैधानिक कानून व प्रशासनिक कानून आदि को सम्मिलित किया गया है।

अतः आप यहां जान गये होंगे कि उपर्युक्त दोनों प्रकार के कानून दो भिन्न प्रकार की सामाजिक एकता अर्थात यांत्रिक एकता व सावयवी एकता की जीवन शैली के परिणाम हैं। दमनकारी कानून में व्यक्तियों में व्याप्त समानता पाई जाती है, और इससे उत्पन्न एकता को यांत्रिक एकता का नाम दिया गया है, जबकि वही दूसरी ओर प्रतिकारी

कानून का संबंध श्रम विभाजन व समाज में पनपी विभिन्नताओं से है, और ऐसे समाज में उत्पन्न एकता को दुर्खीम सावयवी एकता का नाम देता है। जिसे आप भली भाॅति उपर्युक्त पढकर जान गये होंगे।

8.3 श्रम विभाजन के कारण एवं परिणाम

श्रम विभाजन के कारण -

दुर्खीम कहते हैं कि श्रम विभाजन एक सामाजिक तथ्य है और इसके कारणों की खोज भी सामाजिक संदर्भ में होनी चाहिए। उन्होंने अपनी पुस्तक के दूसरे खण्ड मे श्रम विभाजन के कारकों, दशाओं एवं उनके परिणामों की चर्चा की है। दुर्खीम के अनुसार श्रम विभाजन के दो प्रमुख कारक हैं।

(अ) प्राथमिक

(ब) द्वितीयक।

प्राथमिक कारकों में वह जनसंख्या के आकार व घनत्व वृद्धि उसके परिणामों को सम्मिलित करते हैं। एवं द्वितीयक कारकों में सामान्य चेतना की बदली हुई अवस्था और पैत्रिकता के घटते प्रभाव को शामिल करते हैं। आइए अब हम यहां इन कारकों का उल्लेख करके समझते हैं।

प्राथमिक कारक-

प्राथमिक कारक में दुर्खीम जनसंख्या के आकार व घनत्व में वृद्धि को श्रम विभाजन का प्रमुख कारक मानते हैं। वे कहते हैं कि जैसे-जैसे जनसंख्या के आकार व घनत्व में वृद्धि होती जाती है। वैसे ही उस समाज में रहने वाले लोगों की आवश्यकताएं उसी क्रम में बढ़ती जाती हैं। उन आवश्यकताओं की पूर्ति का समाज में श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण ही प्रमुख रास्ता बन जाता है। इसके कार्य को श्रम विभाजन करके पूर्ण किया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप उन लोगों में पारस्परिक निर्भरता बढ़ती जाती है। उदाहरण- श्रम विभाजन व विशेषीकरण को इस प्रकार देखा जा सकता है कि जूते बनाने वाला कोई एक सिर्फ सिलाई करता है तो दूसरा पॉलिस व तीसरा बुनाई आदि करता है, लेकिन वह कार्य जब पूर्ण होता है जब वे सभी मिलकर उस कार्य को विशेषीकरण के साथ करते हैं। जिससे उनमें पारस्परिक निर्भरता बनी रहती है। जोकि नैतिक घनत्व का प्रमुख कारण बनती है। जिसे नई तकनीकों एवं यातायात के संचार साधनों से ओर अधिक प्रभाव मिल जाता है। अतः आप यहां जान गये होंगे कि जनसंख्या का बढ़ना श्रम विभाजन के विकास का प्रमुख कारण बन जाता है।

द्वितीयक कारक-

द्वितीयक कारक में दुर्खीम सामान्य चेतना की बदली अवस्था व पैतृकता के घटते प्रभाव को सम्मिलित करते हैं। प्राचीन आदिम समाजों में समानताएं अधिक थी और सामूहिकता का बोलबाला था। व्यक्ति सामूहिक चेतना से मार्गदर्शन प्राप्त करता था, लेकिन जब सामूहिक हितों पर व्यक्तिगत चेतना छा जाती है तब श्रम विभाजन और

विशेषीकरण पनपता है। तथा दुर्खीम कहते हैं कि पैतृकता के प्रभाव कारण परिवर्तन के अवसर कम होते हैं लेकिन जब जनसंख्या बढ़ने के द्वारा श्रम का भी विभाजन होता है तब पैतृकता का स्तर गिरता है व व्यक्ति की स्वतंत्रता बढती है। क्योकि सरल समाजों में पैतृकता का प्रभाव ज्यादा था लेकिन आधुनिक समाजों में कम। जिसके फलस्वरूप श्रम विभाजन व विशेषीकरण बढ़ा है। अतः यहां स्पष्टतः आप जान गए होंगे कि दुर्खीम ने श्रम विभाजन के कारकों की व्याख्या समाजशास्त्रीय कारकों के आधार पर की है।

श्रम विभाजन के सामाजिक परिणाम-

दुर्खीम ने समाज में श्रम विभाजन के अध्ययन में श्रम विभाजन के सामाजिक परिणामों को बताया है, जोकि निम्न है-

1. श्रम विभाजन के परिणामस्वरूप कार्यों के विभाजन के साथ-साथ कार्य करने की स्वतन्त्रता और गतिशीलता में वृद्धि होती जाती है। जिससे कार्यों के परिवर्तन के अवसर भी बढ़ जाते हैं।

2. श्रम विभाजन के फलस्वरूप समाज में सावयवी एकता बढ़ती है, अर्थात विभिन्न सामाजिक कार्यों को समाज की विभिन्न इकाइयां करती तो अवश्य हैं लेकिन उनमें सामाजिक आवश्यकताओं के आधार पर अन्तःसम्बन्ध और अन्तः निर्भरता बनी रहती है।

3. दुर्खीम ने सभ्यता को श्रम विभाजन का परिणाम माना है, वे कहते हैं कि जैसे श्रम विभाजन का विकास होता है, उसी अनुसार सभ्यता का विकास भी होता है।

4. श्रम विभाजन के फलस्वरूप श्रम का विशेषीकरण होता है।

5. श्रम विभाजन और विशेषीकरण के कारण व्यक्तिगत गुण एंव स्वतन्त्रता का महत्व बढ़ गया है।

6. दुर्खीम व्यक्तिगत एवं सामाजिक परिवर्तन के लिए भी श्रम विभाजन को उत्तरदायी मानते हैं।

7. श्रम विभाजन और विशेषीकरण के फलस्वरूप प्रतिकारी कानून बनाये जाते हैं जिससे व्यक्तिगत हितों की रक्षा हो सके।

8.4 श्रम विभाजन के असामान्य स्वरूप

श्रम विभाजन के असामान्य स्वरूप दुर्खीम नें अपनी पुस्तक के तीसरे खण्ड में उल्लेख किया है। दुर्खीम कहते हैं कि श्रम विभाजन के जो स्वरूप समाज में एकता स्थापित नहीं करते, उन्हें श्रम विभाजन के असामान्य स्वरूप कहते हैं। अतः श्रम विभाजन के जहां कुछ अच्छे परिणाम निकलते हैं, वहीं इसके कुछ व्याधिकीय परिणाम निकलते हैं। आइए अब हम यहां दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित श्रम विभाजन के असामान्य स्वरूपों को जानें। दुर्खीम ने श्रम विभाजन

के तीन असामान्य स्वरूपों का उल्लेख किया है। (अ) आदर्शहीन श्रम विभाजन (ब) बलात् श्रम विभाजन (स) व्यक्तिगत कार्य की अपर्याप्तता वाला श्रम विभाजन। जिसकी चर्चा उन्होंने निम्न प्रकार से की है।

श्रम विभाजन का सामान्य आदर्श तो यह है कि विभिन्न इकाइयों के बीच सहयोग एवं सम्बद्धता हो, लेकिन जब श्रम विभाजन विभिन्न कार्यों के बीच असामंजस्य पैदा कर दे तो तब वह आदर्शहीन श्रम विभाजन कहा जाता है। जिसे हम आर्थिक व वैज्ञानिक क्षेत्र में देख सकते हैं। आर्थिक क्षेत्र में श्रम विभाजन के कारण उद्योगों में विशेषीकरण बढ़ता है इसमें एकता के साथ वहीं दूसरी ओर मालिक-मजदूर संघर्ष व हड़ताल आदि घटनाएं होती हैं। इसी प्रकार, वैज्ञानिक क्षेत्र में भी अनेक शाखाएं व उपशाखाएं आदि खुली हैं। जिससे विज्ञानों की एकता पहले की अपेक्षा कम हुई। बलात श्रम विभाजन में दुर्खीम कहते हैं कि जब लोगों को उनकी योग्यता एवं रूचि के अनुसार कार्य नहीं मिलता है तो उन्हें पीड़ा उठानी पड़ती है। इसकों जाति वर्ग में देखा जा सकता है। यह बाह्य रूप से थोपा गया श्रम विभाजन है। जिससे समाज में पूर्ण एकता स्थापित नहीं होती है। अब श्रम विभाजन का तीसरा असमान्य स्वरूप वैयक्तिक संस्थानों में कार्य करने वाले लोगों को पर्याप्त मात्रा में कार्य प्राप्त नहीं होता है जिससे अव्यवस्था व असम्बद्धता फैलती है और एकता स्थापित नहीं हो पाती है।

बोध प्रश्न-2

i) प्रतिकारी कानून किस प्रकार के समाज की प्रमुख विशेषता है।

(अ) सरल व प्राचीन समाज

(ब) आधुनिक समाज

(स) (अ) व (ब) दोनों

(द) उपयुक्त में से कोई नहीं

सत्य/असत्य बताइये।

ii) यान्त्रिक एकता की अवस्था में प्रतिकारी कानून का प्रचलन होता है।

(अ) सत्य

(ब) असत्य

iii) क्या दुर्खीम श्रम विभाजन को सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख कारण मानते है।

(अ) सत्य

(ब) असत्य

iv) दुर्खीम के अनुसार जनसंख्या के आकार में तथा भौतिक और नैतिक घन्तव में वृद्धि ने श्रम विभाजन को उत्पन्न किया है।

(अ) सत्य

(ब) असत्य

8.5 सारांश

दुर्खीम ने श्रम विभाजन संबंधी अपने विचारों का विस्तार से वर्णन व विश्लेषण अपनी पुस्तक "The Division of Labour in Society" सन् 1893 में किया है। और बताया है कि श्रम-विभाजन सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख कारण है प्रारम्भ में श्रम-विभाजन लिंग भेद अर्थात स्त्री-पुरूष भेद तथा आयु जैसे-बालक, युवा, व वृद्ध आदि के आधार पर था। क्योंकि उस समय समाज सरल व छोटे थे, जिसमें वे दमनकारी कानून द्वारा नियंत्रित होकर यांत्रिक एकता में बंधे थे लेकिन जनसंख्या के आकार, घनत्व और मानवीय आवश्यकताओं की वृद्धि ने श्रम विभाजन को जन्म दिया। जिसके फलस्वरूप श्रम विभाजन में विशेषीकरण हुआ और इस प्रकार के आधुनिक व जटिल समाजों में दमनकारी कानून परिवर्तित होकर प्र्रतिकारी कानून में व एकता सावयवी एकता में परिवर्तित हुई।

8.6 पारिभाषिक शब्दावली

श्रम विभाजन- श्रम विभाजन से तात्पर्य किसी भी स्थाई संगठन में मिलजुलकर काम करने वाले व्यक्तियों, या समूहों द्वारा भिन्न किन्तु समन्वयात्मक क्रियाओं के संपादन से है। अर्थात समाज में किसी कार्य को संपादित करने वाले व्यक्तियों के बीच सम्पन्न की जाने वाली क्रियाओं एवं सेवाओं के वितरण एवं वैभिन्यकरण की प्रक्रिया श्रम विभाजन कहलाती है। जिसकी अभिव्यक्ति दुर्खीम के श्रम विभाजन सिद्धांत में देखी जा सकती है।

सामाजिक एकता- सामाजिक एकता एक नैतिक घटना है यह सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति है।

यांत्रिक एकता- यांत्रिक एकता सादृश्यता अथवा समानता की एकता है। अर्थात जिसमें एक समाज के सभी सदस्य एक दूसरे के समरूप दिखाई देते हैं। व्यक्तियों की समरूपता से दुर्खीम का तात्पर्य उनकी शारीरिक समानता से न होकर मानसिक और विश्वासगत समानताओं से है।

सावयवी एकता- श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण की बहुलता के कारण प्रत्येक व्यक्ति केवल एक कार्य का ही विशेषज्ञ होता है। और दूसरे कार्यों के लिए उसे समाज के अन्य सदस्यों पर निर्भर रहना होता है। जिससे एक विशेष प्रकार की एकता अर्थात सावयवी एकता होती है। जोकि आधुनिक जटिल समाजों की विशेषता है।

दमनकारी कानून- दमनकारी कानून 'सार्वजनिक कानून' होते हैं जो व्यक्ति एवं राज्य के सम्बन्धों का नियमन करते हैं। इनमें व्यक्ति के बजाय सामूहिक हितों को अधिक महत्व दिया जाता है। जैसे आदिम समाजों में व्यक्ति द्वारा सामूहिक चेतना का उल्लंघन करने पर दण्ड दिया जाना।

प्रतिकारी कानून- प्रतिकारी कानून आधुनिक समाजों की विशेषता है। इन कानूनों का उद्देश्य व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों में उत्पन्न असन्तुलन में सामान्य स्थिति पैदा करना होता है।

असामान्य स्वरूप- श्रम विभाजन के जो स्वरूप समाज में एकता स्थापित नहीं करते, उन्हें श्रम विभाजन के असामान्य स्वरूप कहते हैं, जैसे- आदर्शहीन श्रम विभाजन व बलात् श्रम विभाजन आदि।

8.7 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

i) (ब)

ii) (अ)

iii) (अ)

बोध प्रश्न-2

i) (ब)

ii) (ब) असत्य

iii) (अ) सत्य

iv) (अ) सत्य

8.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Giddens, Anthony, (1978) Durkheim, Harvester press, Hassocks

Aron, Raymond, (1970) Main currents in sociological thought, vol.1 & 2, Penguin books, London

Bottomore, T.B., (1969) Socioloogy: A guide to problem and literature,

Allen and unvin, London

Durkheim, Emile, (1965) The division of labour in society, Free press, Newyork

8.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

Jones, Robert Alun, (1986) Emile Durkheim- An Introduction to four Major Works, sage publications, Inc.: Beverly Hills

Coser, Lewis A, (1996) Masters of Sociological Thought, Rawat publication, Jaipur

Giddens, Anthony, (1993) Sociology, polity press, Cambridge

Mitchell, G Duncan, (1979) A New Dictionary of Sociology, Routledge & Kegan Paul, London

गुप्ता एवं शर्माए (2006) समाजशास्त्रए साहित्य भवन पब्लिकेशनए आगरा

सिहं जे0 पी0ए (2008) समाजशास्त्र-अवधारणाएं एवं सिद्धान्तए पीएचआई लर्निग नई दिल्ली

8.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित श्रम विभाजन के सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
2. यांत्रिक एकता व सावयवी एकता को समझाइए।
3. दमनकारी कानून एवं प्रतिकारी कानून किस प्रकार के समाज से सम्बन्धित हैं? तुलना कीजिए।
4. वर्तमान समाज में श्रम विभाजन सिद्धांत का महत्व स्पष्ट कीजिए।

इकाई-9 मैक्स वेबर:सामाजिक क्रिया

Max Weber: Social Action

इकाई रुपरेखा

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 मैक्स वेबर का परिचय

9.3 समाजशास्त्र के विकास में योगदान

9.4 सामाजिक क्रिया का अर्थ एवं परिभाषा

9.5 सामाजिक क्रिया की विशेषताएँ

9. 6 सामाजिक क्रिया के प्रकार

9.7 सारांश

9.8 संदर्भ सूची

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

मैक्स वेबर एक सुप्रसिद्ध जर्मन समाजशास्त्री और राजनीतिक अर्थशास्त्री हैं। वे प्रारम्भ से ही बहुमुखी प्रतिभा के धनी रहे हैं और असाधारण ख्याति प्राप्त की है। आपकी चिंतन शक्ति और बौद्धिक प्रतिभा आपके कार्यों से सर्वविदित है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण को आपकी विशेषता माना गया है। इसी के कारण वे अपनी सामाजिक विचारधारा को तत्कालीन अन्य विद्वानों की तुलना में अधिक प्रभावशाली ढंग से व्यक्त कर पाए। उन्होंने समाजशास्त्रीय अध्ययन में 'आदर्श मॉडल' का वैज्ञानिक सिद्धांत विकसित किया और "धर्म के समाजशास्त्र" को एक सार्थक सामाजिक विचारधारा के रूप में प्रतिपादित किया। उन्होंने सामाजिक वर्ग और प्रस्थिति पर भी नए विचार प्रस्तुत किए। इस प्रकार, विश्व की सामाजिक विचारधाराओं के क्षेत्र में आपका योगदान अमूल्य रहा है।

मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। उनके मतानुसार, समाजशास्त्र एक ऐसा विज्ञान है जो सामाजिक क्रियाओं का सार्थक बोध कराता है और समाज सामाजिक अंतःक्रियाओं की एक सार्थक अभिव्यक्ति है। इस प्रकार मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में स्थापित करने के लिए आजीवन प्रयास किए और सामाजिक वर्ग, शक्ति, सामाजिक क्रिया और नौकरशाही आदि पर अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किए। इस रूप में मैक्स वेबर को समाजशास्त्र में आजीवन याद किया जाएगा।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने बाद आपके लिए संभव होगा

1. वेबर के सामाजिक क्रिया की संकल्पना का विवेचन करना
2. सामाजिक क्रिया के अर्थ और विशेषताओं की चर्चा करना
3. सामाजिक क्रिया के प्रकारों को समझाना

9.2 मैक्स वेबर का परिचय

महान जर्मन विचारक, प्रसिद्ध राजनीतिक अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री मैक्स वेबर का जन्म अप्रैल 1864 में जर्मनी के थिगिया के एरफ़र्ट में एक धनी परिवार में हुआ था। उनके पिता पश्चिम जर्मनी के एक कपड़ा व्यापारी परिवार से थे। वे जर्मनी की नेशनल लिबरल पार्टी के एक प्रमुख सदस्य भी थे। वेबर की स्कूली शिक्षा 1882 में समाप्त हुई। इसके बाद उन्होंने हीडलबर्ग विश्वविद्यालय में क़ानून की पढ़ाई शुरू की। सैन्य शिक्षा पूरी करने के बाद, वे आगे की पढ़ाई के लिए बर्लिन विश्वविद्यालय आ गए। यहाँ से उन्होंने 1886 में क़ानून की डिग्री प्राप्त की। 1893 में मैक्स वेबर का विवाह मैरियन रिंटज़र से हुआ। विवाह के बाद उन्होंने अपने माता-पिता का घर छोड़ दिया और अपना घर बसाया। उन्होंने कुछ वर्षों तक बर्लिन विश्वविद्यालय में कानून के प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। 1894 में वेबर को फ़ोबर्ग विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किया गया। 1897 में वेबर गंभीर रूप से बीमार हो गए और चार वर्षों तक बीमार रहने के बाद, 1901 में वेबर ने बौद्धिक दृष्टिकोण से रचनात्मक कार्य पुनः आरंभ किया। उन्होंने इटली, हॉलैंड, बेल्जियम और अमेरिका की यात्रा की। अमेरिका में अपने तीन महीने के प्रवास के दौरान वे वहाँ की सभ्यता और संस्कृति से बहुत प्रभावित हुए। इस प्रभाव के कारण उन्होंने प्रोटेस्टेंट नैतिकता, पूंजीवाद और नौकरशाही आदि विषयों पर व्यापक लेखन कार्य किया। 1918 में वे वियना विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर बने और 14 जून 1920 को वहीं उनका निधन हो गया।

9.3 समाजशास्त्र के विकास में योगदान (Contribution in the Development of Sociology)

वेबर ने समाजशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जो इस प्रकार है। उनके अनुसार, "समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक क्रिया की व्याख्यात्मक समझ प्रस्तुत करने का प्रयास करता है ताकि उसकी प्रक्रिया और प्रभावों को तर्क सहित समझाया जा सके।" इस परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि वेबर ने सामाजिक क्रिया को समाजशास्त्र के केंद्रीय अध्ययन का विषय माना। वेबर की समाजशास्त्र की परिभाषा में कई महत्वपूर्ण तत्व हैं - व्याख्या और समझ प्रस्तुत करने का प्रयास, सामाजिक क्रिया पर विशेष ध्यान देना और इन घटनाओं की कारणात्मक व्याख्याएँ विकसित करने का प्रयास आदि। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वेबर मुख्य रूप से इस बात पर बल देते हैं कि सामाजिक क्रियाओं को वैज्ञानिक दृष्टि से समझा जाना चाहिए। उन्होंने समाजशास्त्र का केंद्रीय लक्ष्य भी सामाजिक क्रियाओं को वैज्ञानिक दृष्टि से समझना माना। इसीलिए उन्होंने ऐतिहासिक संदर्भ में सामाजिक मूल्यों को वस्तुनिष्ठ रूप से समझने पर विशेष ध्यान दिया और समाज पर उनके समाजशास्त्रीय प्रभाव का मूल्यांकन करने का भी प्रयास किया।

9.4 सामाजिक क्रिया का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Social Action)

वेबर ने 'सामाजिक क्रिया' शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ में किया है। सामाजिक क्रिया की अवधारणा को समझे बिना वेबर की समाजशास्त्र संबंधी परिभाषा और उनके विचारों को समझा नहीं जा सकता। उन्होंने सामाजिक क्रिया की निम्नलिखित परिभाषा दी है-

"क्रिया में वे सभी मानवीय व्यवहार सम्मिलित होते हैं जिनके साथ किया करने वाला व्यक्ति व्यक्तिनिष्ठ अर्थ जोड़ता है।"

इस परिभाषा के अनुसार, वेबर ने सामाजिक क्रिया और विशिष्ट मानवीय व्यवहार को एक ही माना है। वे सभी मानवीय व्यवहार जिन्हें कोई व्यक्ति किसी अर्थ या उद्देश्य को ध्यान में रखकर करता है, सामाजिक क्रियाएँ हैं। वेबर के अनुसार, मनुष्य की निरर्थक क्रियाओं को सामाजिक क्रिया या मानवीय व्यवहार नहीं माना जाना चाहिए। उन्होंने सभी सार्थक व्यवहारों को सामाजिक क्रिया के अंतर्गत शामिल किया है।

"इस अर्थ में कार्रवाई या तो बाह्य या पूर्णतः आंतरिक या व्यक्तिपरक हो सकती है, जिसमें किसी स्थिति में सकारात्मक हस्तक्षेप शामिल हो सकता है या ऐसी स्थिति में जानबूझकर व्यवधान से बचना या धैर्यपूर्वक उसका लाभ उठाना शामिल हो सकता है।"

सामाजिक क्रिया की उपरोक्त परिभाषा में, वेबर ने दो प्रकार की क्रियाएँ बताई हैं - बाह्य क्रियाएँ और आंतरिक क्रियाएँ। आंतरिक क्रिया से आपका तात्पर्य व्यक्तिपरक क्रिया से है। अर्थात्, वे क्रियाएँ जिन्हें कोई व्यक्ति अपने दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए करता है या व्याख्या करता है, व्यक्तिपरक या वस्तुनिष्ठ क्रियाएँ हैं।

मैक्स वेबर के अनुसार, जब कोई क्रिया अन्य व्यक्तियों की क्रिया से प्रभावित होती है, तो उसे सामाजिक क्रिया कहते हैं। उनके शब्दों में-

"किसी भी क्रिया को सामाजिक क्रिया तब कहा जा सकता है जब वह (क्रिया) व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा दिए गए व्यक्तिपरक अर्थ के कारण अन्य व्यक्तियों के व्यवहार से प्रभावित होती है और उनकी गतिविधियाँ उससे निर्धारित होती हैं।"

वेबर के मतानुसार, सामाजिक क्रिया और व्यक्तिगत क्रिया भिन्न हैं, दोनों में बहुत अंतर है, अर्थात् सामाजिक क्रिया व्यक्तिगत क्रिया नहीं है। वेबर केवल उद्देश्यपूर्ण व्यवहार को ही सामाजिक क्रिया कहते हैं और जिस मानवीय व्यवहार का कोई उद्देश्यपूर्ण अर्थ नहीं होता, वह सामाजिक क्रिया के दायरे में नहीं आता। उद्देश्यपूर्ण अर्थ से वेबर का तात्पर्य यह है कि कर्ता स्वयं अपनी क्रिया से जो अर्थ जोड़ता है, वही अर्थ दूसरों को भी उसी प्रकार की क्रिया के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रेरित करता है।

इसे दूसरे रूप में इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है। मनुष्य के जीवन में अनेक आवश्यकताएँ होती हैं। वह जो भी कार्य करता है, उसके पीछे कुछ-न-कुछ उद्देश्य अवश्य होता है और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही उसे आचरण करना होता है। अतः समान में रहकर सामाजिक अन्तःक्रिया आवश्यक है और इन्हों अन्त: क्रियाओं के परिणामस्वरूप सामाजिक सम्बन्ध उत्पन्न होते है, किन्तु सामाजिक क्रिया के अन्तर्गत मानव के वे ही व्यवहार सम्मिलित किये जाते हैं, जो अर्थ पूर्ण होते हैं। इसी को पैक्स वेबर 'अर्थपूर्ण क्रिया' कहते हैं। अर्थात् जब व्यक्ति की क्रिया को विशिष्ट अर्थ प्रदान कर दिया जाता है तो यह सामाजिक क्रिया हो जाती है। इसके अतिरिक्त क्रिया का सम्बन्ध वर्तमान, भूत अथवा भविष्य किसी काल से भी हो सकता है तथा यह बाह्य भी हो सकती है और आन्तरिक अथवा मानसिक भी हो गकती है।

9.5 सामाजिक क्रिया की विशेषताएँ (Characteristics of Social Action)-

1. **दूसरे के प्रति उन्मुख (Oriented towards others) -** वेबर ने लिखा है, "सामाजिक क्रिया दूसरों के संभावित भूत, वर्तमान या भविष्य के व्यवहार की ओर उन्मुख हो सकती है।" आप कहते हैं कि सामाजिक क्रिया में दो या दो से अधिक व्यक्ति होने चाहिए। उन्हें एक-दूसरे के व्यवहार को भी प्रभावित करना चाहिए। सामाजिक क्रिया परिचितों या अजनबियों के साथ की जा सकती है। क्रिया भूत, वर्तमान या भाषायी रूप से प्रत्याशित व्यवहार से भी प्रभावित हो सकती है। आपने उदाहरण दिया है कि क्रिया अतीत में हुए किसी हमले के कारण बदला लेने के लिए हो सकती है। यह वर्तमान में बचाव के लिए और भविष्य में हमले से सुरक्षित रहने के लिए हो सकती है। आपने एक अन्य उदाहरण के माध्यम से सामाजिक क्रिया की इस विशेषता को स्पष्ट किया है। आप कहते हैं कि 'धन' विनिमय का एक साधन है, जिसे प्रत्येक कर्ता भुगतान के रूप में स्वीकार करता है। क्योंकि उसे आशा होती है कि भविष्य में अवसर आने पर अनजान लोग बदले में धन स्वीकार करेंगे।

2. **प्रत्येक किया' सामाजिक' नहीं (Every Action is not 'Social')** - वेबर ने सामाजिक क्रिया की दूसरी विशेषता को इन शब्दों में व्यक्त किया है, "हर प्रकार की क्रिया, यहाँ तक कि बाह्य क्रिया भी, वर्तमान चर्चा के अर्थ में 'सामाजिक' नहीं होती।" उन्होंने स्पष्ट किया है कि यदि बाह्य क्रिया पूर्णतः निर्जीव या निर्जीव वस्तुओं की ओर उन्मुख है, तो वह असामाजिक क्रिया है। सामाजिक क्रिया व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से निर्मित होती है, जब वह दूसरों के व्यवहार की ओर उन्मुख होती है। आपने उदाहरण दिया है कि धार्मिक व्यवहार सामाजिक क्रिया नहीं है। यदि वह केवल एकांत में बैठकर ईश्वर का ध्यान करने या प्रार्थना या पूजा करने के रूप में व्यक्त होती है। किसी व्यक्ति की आर्थिक गतिविधि तभी सामाजिक होगी, जब वह दूसरों के व्यवहार का भी ध्यान रखे। भविष्य में लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उत्पादन करना सामाजिक क्रिया है।

3. **प्रत्येक प्रकार का मानवीय सम्पर्क सामाजिक नहीं (Every Type of Human Contact is not "Social') -** मैक्स वेबर ने लिखा है, "मनुष्य के हर प्रकार के संपर्क में सामाजिक विशेषताएँ नहीं होतीं। इसे सामाजिक तभी कहा जाएगा जब कर्ता का व्यवहार दूसरों के व्यवहार के प्रति सार्थक रूप से उन्मुख हो।" आपने इसे एक उदाहरण देकर समझाया है। यदि दो साइकिल सवार आपस में टकराते हैं, तो यह एक स्वाभाविक घटना के समान है। यहाँ दो व्यक्तियों का संपर्क सामाजिक नहीं है। लेकिन यदि आपस में टकराव से बचने का प्रयास हो, या टकराव के बाद हाथापाई, गाली-गलौज, मारपीट या मैत्रीपूर्ण बातचीत हो, तो इसे 'सामाजिक क्रिया' कहा जाएगा।

4. **सामाजिक क्रिया समरूप नहीं होती (Social Action is not Identical)-** वेबर ने सामाजिक क्रिया की चौथी विशेषता का उल्लेख करते हुए लिखा है, "सामाजिक क्रिया न तो कई लोगों द्वारा की गई एक जैसी क्रिया है और न ही वह क्रिया जो केवल अन्य लोगों से प्रभावित होती है।" आपने उदाहरण दिया कि बारिश हो रही है और लोग सड़क पर छाते खोल लेते हैं। इस प्रकार की क्रिया को सामाजिक नहीं कहा जाएगा क्योंकि छाते खोल रहे लोगों की क्रियाएँ एक-दूसरे की क्रियाओं को प्रभावित नहीं कर रही हैं, वे स्वयं को बारिश से बचा रहे हैं, इसीलिए उनकी क्रियाएँ एक जैसी हैं। उन लोगों ने बारिश से प्रभावित होकर छाते खोले हैं, न कि एक-दूसरे को देखकर। किसी ने भी अपनी क्रिया से किसी को प्रभावित नहीं किया है। उनके बीच कोई परस्पर सार्थक क्रियाएँ नहीं हैं। इसलिए, यह आवश्यक नहीं है कि समान या एकरूप क्रियाएँ सामाजिक क्रियाएँ हों।

5. **अनुकरणात्मक क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं (Imitative Action is not Social Action)-** मैक्स वेबर ने अपनी कृति मे यह भी स्पष्ट किया है कि केवल दूसरो की क्रियाओ का अनुकरण मात्र ही सामाजिक क्रिया नहीं हो सकता जब तक कि वह अन्य घ्यक्ति को (जिसका कि अनुकरण किया जा रहा है) क्रिया से अर्थपूर्ण सम्बन्ध न रखता हो अथवा उसकी क्रिया द्वारा अर्थपूर्ण रूप से प्रभावित न होता हो। उदाहरणार्थ- नदी में तैरते समय कोई

व्यक्ति सामने तैरने वाले किसी व्यक्ति की नकल करके तैरना सीखता है, तो यह क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं कहलायेगी। क्योंकि नकल करने वाले वा कार्य आगे तैरने वाले के व्यवहार या क्रिया से किसी रूप मे सम्बन्धित नहीं है, किन्तु यदि तैरने का प्रशिक्षण देने वाले व्यक्ति का अनुकरण करके तैरना सीखा जाये तो यह क्रिया सामाजिक-क्रिया कहलायेगो क्योकि वह व्यक्त उस प्रशिक्षक से अर्थपूर्ण ढंग से सम्बन्धित है।

9.6 सामाजिक क्रिया के प्रकार (Types of Social Action)

मैक्स वेबर ने क्रिया की अवधारणा को और विस्तृत सन्दर्भ में रखा है। वे कहते हैं कि कोई भी क्रिया शून्य में नहीं होती। यदि सामाजिक पर्यावरण के सन्दर्भ है तो यह अनिवार्य रूप से अन्य कर्ताओं और सामाजिक पर्यावरण के सन्दर्भ में होती है। वेबर ने सामाजिक क्रिया के जिन प्रकारों को दिया है, वे अनिवार्य रूप से उनके आदर्श प्रारूप के अंग मात्र हैं। सामाजिक क्रिया के निम्न प्रकार है –

(1) तार्किक क्रिया: लक्ष्य के प्रति अभिस्थापित (Rational Action: Oriented to goal)- पेरेटो की तार्किक क्रिया की तरह ही मैक्स वेबर की यह तार्किक क्रिया है। इसमें कर्ता अपनी क्रिया का सम्बन्ध तार्किक रूप से लक्ष्य के साथ जोड़ता है। एक इंजीनियर को लीजिये। वह किसी नदी पर पुल बनाना चाहता है। पुल की ऊंचाई, चौड़ाई, भार वहन शक्ति आदि लक्ष्यों को तकनीकी ढंग से परिभाषित करता है। इस पुल को बनाने के लिये जिस तरह की क्रियाओं को उसे करना है यानी पुल के कितने खम्भे होंगे, कितनी सीमेन्ट चाहिये, कितने तकनीशियन चाहिये उन सब की योजना वह तार्किक ढंग से बनाता है। यदि पुल बनाने की क्रिया पुल के लक्ष्य के अनुरूप बनती है तो सब ठीक-ठाक हो जाता है। यहाँ इंजीनियर लक्ष्य को ध्यान में रखकर क्रिया का सम्पादन करता है। यह क्रिया हर तरह से लक्ष्य के प्रति अभिस्थापित होती है, सरोकार रखती है। वेबर की यह तार्किक क्रिया है।

(2) तार्किक किया : मूल्य के प्रति अभिस्थापित (Rational Action: Oriented to value) - क्रिया का दूसरा प्रकार तर्क पूर्ण होने के साथ मूल्यों के प्रति भी अभिस्थापित होता है। ऐसी मूल्य की और रुझान वाली तार्किक क्रिया विश्वास पर आधारित होती है। कुछ ऐसी क्रियाएँ होती हैं जो कर्ता की दृढ़ धारणाओं पर निर्भर होती हैं। इन क्रियाओं के करने में कर्ता कभी भी यह नहीं सोचना कि इनके करने के परिणामस्वरूप कर्ता का भविष्य क्या होगा। जब वह अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा-सुश्रुषा करता है तो उसकी यह दृढ़ धारणा है कि माता-पिता के प्रति उसके जो मूल्य थे, उनकी पूर्ति हुई है। ऐसी क्रिया का रुझान हर प्रकार के मूल्यों के प्रति होता है। वह मूल्यों की उपेक्षा के लिये किसी प्रकार का समझौता नहीं करता । राजस्थान में जब अल्लाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ के किले पर आक्रमण किया तो सैकड़ों महिलाओं ने जोहर किया। जोहर मूल्यों से जुड़ा है। मूल्य यह है कि ये स्त्रियों आक्रमणकारी के सामने अपने आदर को बनाये रखेंगी, उनके हाथों निरस्कृत नहीं होगी। जोहर को करना प्रतिष्ठा का मूल्य है। इस तरह की क्रिया का अभिस्थापन मूल्यों की प्राप्ति के लिये होता है।

(3) भावनात्मक या संवेगात्मक क्रिया (Affective or Emotional Action)- क्रिया का यह भावनात्मक स्वरूप है। यह मस्तिष्क की वह स्थिति है जिसमें आदमी आवेश में आकर क्रिया को कर देता है। इस

प्रकार की क्रिया का सम्बन्ध न तो किसी लक्ष्य से होता है और न ही किन्हीं मूल्यों से जुड़ी होती है। किसी विशेष परिस्थिति में कर्ता किसी संवेगात्मक स्थिति में आ जाता है और क्रिया को कर देता है। संवेग की एक स्थिति है : दो व्यक्ति सामान्य और सहज रूप से बातचीत कर रहें हैं। कुछ ऐसा प्रसंग चल जाता है कि दूसरा व्यक्ति पहले व्यक्ति के माता-पिता के प्रति अश्लील शब्दों का प्रयोग करता है। यह प्रयोग उसके संवेगों को उद्वेलित करता है और देखते ही देखते दूसरे व्यक्ति के गाल पर थप्पड़ लगा देता है। विशुद्ध रूप से यह क्रिया संवेगात्मक है। इसी तरह अभी ही स्कूल से लौटे हुए बच्चे को किसी बात पर क्रोध करके माँ घर से बाहर कर देती है। यह क्रिया भी संवेगात्मक है। कई बार संवेगात्मक स्थिति में कर्ता हत्या भी कर देता है।

संवेगात्मक क्रिया को समझा नहीं जा सकता। यह भावना प्रधान होती है। वास्तव में ऐसी क्रिया के विश्लेषण को मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषक ही कर सकते हैं। कुछ आलोचकों ने वेबर ही की इस प्रक्रिया को अधिक विस्तृत रूप दिया है। वे कहते हैं कि इस तरह की क्रिया को तुरत-फुरत भावावेश में हो जाती है, इन्द्रियों को तुष्टि देती है। कुछ आलोचकों ने यह भी कहा है कि संवेगात्मक क्रिया का अध्ययन क्षेत्र वस्तुतः मनोविज्ञान ही है, समाजशास्त्र नहीं।

4) परम्परागत क्रिया (Traditional Action)- बेवर की क्रिया के इस प्रकार में रिवाज़, विश्वास और वैयक्तिक आदतों को सम्मिलित किया गया है। प्रत्येक समाज और समूह में जन्म, विवाह, मृत्यु, त्यौहार आदि होते हैं इनके साथ में जुड़े हुए रिवाजों और विश्वासों की एक बहुत बड़ी तालिका होती है। ऐसी क्रियाएं जो रिवाजों, विश्वासों और आदतों द्वारा संचालित होती है, परम्परागत क्रियाएं हैं। इस क्रिया में स्वयं कर्ता को किसी लक्ष्य को निर्धारित नहीं करना पड़ता। वह मानकर चलता है कि परम्पराओं, विश्वासों आदि में ही अन्तर्निहित लक्ष्य होते हैं। उसका तो काम केवल यही है कि उद्देश्यों के बारे में कुछ भी सोचे बिना, आंख बन्द कर परम्पराओं का पालन करता चले। लक्ष्य की तरह मूल्यों के बारे में भी वह कुछ नहीं सोचता । जब रिवाजों और परम्पराओं का परिपालन पीढ़ी दर पीढ़ी होता आया है, तो वह मानता है कि इसमें कोई न कोई मूल्य अवश्य होंगे। इसके सम्पादन में कर्ता संवेगात्मक भी नहीं होता। वह तो सहज क्रिया मानकर इन क्रियाओं को करता रहता है। रुढ़िवादी और प्रगतिशील समाजों में भी बराबर परम्परागत क्रियाएँ होती रहती हैं। इस क्रिया को आदर्श प्रारूप का एक प्रकार देने के पीछे वेबर की यही बलवती भावना थी।

9.7 सारांश

वैज्ञानिक व्यवहार, इसलिये लक्ष्य प्राप्ति के तार्किक क्रिया और मूल्यों का जोड़ है। मूल्य सत्य हैं और तार्किकता, तर्कशास्त्र और अनुसंधान का नियम है। वैध परिणामों को पाने के लिये तार्किकता और मूल्य दोनों से कभी मुक्ति नहीं मिल सकती। इसलिये वेबर कहते हैं कि विज्ञान तार्किकता की एक प्रक्रिया है और आधुनिक पश्चिमी समाज की यह एक विशेषता है। अतः जब कभी हम आधुनिक समाज की कल्पना करते हैं तो हमें किसी भी निर्वचन में

तार्किकता और मूल्यों को प्राथमिकता देनी होगी। और यही दोनों लक्षण सामाजिक क्रिया के प्रकारों में देखने को मिलते हैं।

9.8 संदर्भ सूची

ऐरो, रेमण्ड, 1967: मेन करंटस इन सोशियोलोजिकल थॉट, वाल्यूम-2, लन्दन, पेंगुइन बुक्स।

2. बेन्डिक्स, रैनहाई, 1966: मैक्स वेबर; एन इंटलैक्चुअल पोर्टरेट, लन्दन, हाइनमन।
3. फ्राएंड, जूनियन, 1968: द सोशियोलाजी आफ मैक्स वेबर, न्यूयार्क, रैंडम हाउस।
4. गिडेन्स, एंथनी, 2006: पूँजीवाद और आधुनिक सामाजिक सिद्धान्त, दिल्ली, ग्रंथ शिल्पी।
5. ESO-03, 1991: सामाजशास्त्रीय सिद्धांत, इन्दरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ।

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. मैक्स वेबर के सामाजिक क्रिया का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. सामाजिक क्रिया के प्रकारों का विस्तृत व्याख्या कीजिए।

इकाई -10 आदर्श प्रारूप
Ideal Type

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 आदर्श प्रारूप का अर्थ और परिभाषा

10.3 आदर्श प्रारूप की विशेषता

10.4 आदर्श प्रारूप के प्रकार एवं संरचना

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 संदर्भ ग्रंथ की सूची

10.8 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना:

आदर्श प्रारूप अवधारणा को मैक्स वेबर ने दिया। वेबर ने सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के लिए प्रत्यक्षवाद एवं प्रकार्यवाद के स्थान पर समाजशास्त्र के अध्ययन के लिए पद्धतिशास्त्र का प्रयोग करते है जिसे हम वेबर का पद्धतिशास्त्र कहते है। मैक्स वेबर को आधुनिक समाजशास्त्र का दूसरा संस्थापक कहा जाता है क्योकि ये भी समाजशास्त्र को विज्ञान बनाना चाहते है लेकिन प्रत्यक्षवाद पद्धति के माध्यम से नहीं बल्कि किसी अन्य माध्यम से। मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र के अध्ययन के लिए पद्धतिशास्त्र का प्रयोग किया है। मैक्स वेबर समाजशास्त्र में दो पद्धतियों का प्रयोग करते है। 1- वस्तुनिष्ठ पद्धति 2 - व्यक्तिनिष्ठ पद्धति, वस्तुनिष्ठ पद्धति अध्ययन करने का एक ऐसा तरीका है जिसमें अनुसंधान कर्ता तटस्थ होकर मानव व्यवहारों का अध्ययन करता है इसमें समाज सापेक्ष अध्ययन नहीं किया जा सकता इसमें नैतिकता, मानव मूल्यों इत्यादि के आधार पर घटना का यथार्थ अध्ययन किया जाता है वही व्यक्तिनिष्ठ पद्धति में समाज का अध्ययन समाज के सापेक्ष किया जाता है इसमें सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अध्ययन किया जाता है। इस इकाई में हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि मैक्स वेबर ने सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के आधार पर किस प्रकार से आदर्श प्रारूप का निर्माण करेंगे। जिससे

सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में अनुसंधान कर्ता को सहायता मिल जाए और सामाजिक घटनाओं का यथार्थ अध्ययन हो सके।

10.1 उद्देश्य

1 -अनुसंधान कर्ता को सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में सहायता मिल सके

2- आदर्श प्रारूप के माध्यम से अनुसंधान कर्ता अपने अध्ययन कि दिशा से नहीं भटकता साथ ही उसे एक ऐसी समझ विकसित हो जाती है जिससे सामाजिक घटनाओं का यथार्थ अध्ययन हो सके।

10.2 आदर्श प्रारूप का अर्थ और परिभाषा

आदर्श प्रारूप किसी घटना, वस्तु अथवा वर्ग विशेष की समस्त आवश्यक विशेषताओं का सम्पूर्ण अथवा सम्पूर्ण रूप से चित्रण करने की विधि आदर्श प्रारूप के नाम से जानी जाती है। आदर्श प्रारूप की अवधारणा के पीछे मूल धारणा यही है कि सामाजिक घटनाओं का विश्लेषण उनकी परिवर्तनशील एवं जटिल प्रकृति के कारण उनकि विशेषताओं के अत्यांत्रिक रूपों के संदर्भ में ही किया जा सकता है, जिन्हें यथार्थ में पाया जाना कठिन है। समाजशास्त्र में आदर्श प्रारूप की अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग मैक्स वेबर ने अपनी पुस्तक ''द प्रोटेस्टेण्ड इथिक एण्ड द स्प्रिट आफ केपिटलस्मि और द मेथोडोलाजी आफ द सोशल साइन्सेस'' में किया। प्रथम पुस्तक में मैक्स वेबर ने प्रोटेस्टेण्ड इथिक तथा पूंजीवाद की आत्मा और दूसरी पुस्तक में नौकरशाही एवं शुद्ध बाजार के आदर्श प्रारूपों की रचना की है।

मैक्स वेबर ने विधिवत रूप से आदर्श प्रारूप की परिभाषा दी है। मैक्स वेबर के समय यूरोप में अध्ययन विधि के क्षेत्र में दो महत्वपूर्ण मुद्दे थे। पहला मुद्दा जहा वैचारिक विधि से जुड़ा था वही दूसरा मुद्दा तुलनात्मक था। इस संबंध में डिल्ये और रेकर्ट जो दोनो विधियों के पृथक ध्रवों पर खड़े थे के मध्य बहुत बड़ा विवाद था । मैक्स वेबर ने इन दोनों ध्रवों के मध्य आदर्श प्रारूप को रखा। वेबर के ऊपर इन दोनों विद्धानों का प्रभाव पड़ा। जहा वेबर ने डिल्ये के समझ और मूल्य समाजशास्त्र की बुनियादी अवधारणाओं को स्वीकार किया वहीं रेकर्ट से उन्होनें यह लिया कि विज्ञान तो आखिर विज्ञान ही है, चाहे वह मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करता हो, अर्थात वेबर ने डिल्थे से समझ और मूल्यों को लिया और रेकर्ट से समाजशास्त्र को विज्ञान का स्थान दिया। वेबर रेकर्ट की आलोचना करते हुए कहते है कि विज्ञान और इतिहास परस्पर विरोधी नहीं है और समाजशास्त्र एक विज्ञान है जिसकी अध्ययन सामग्री इतिहास से ली जाती है। अतः वेबर ने आदर्श प्रारूप की व्याख्या एक विधि के रूप में की है।

वेबर के समय मे दूसरा जो मुद्दा था वह तुलनात्मक विधि थी जिसे हम सामाजिक स्थितियों जैसे - क्रीति, वर्ग, धर्म, समाजवाद आदि का तुलनात्मक अध्ययन करना है तो इसकि विधि आदर्श प्रारूप ही है।

मैक्स वेबर के अनुसार ''आदर्श प्रारूप प्राकल्पनात्मक मूर्त स्थितिया'' है। इसका निर्माण सामाजिक यथार्थ के आधार पर किया गया है और इसका निश्चित उपयोग तुलनात्मक है। वेबर आदर्श प्रारूप के कई उदाहरण देते है जैसे चर्च, धार्मिकी सम्प्रदाय, इसाई सम्प्रदाय आदि। वेबर का मानना है कि आदर्श प्रारूप सामान्य या मूर्त नहीं है इसकि प्राकृति प्राकल्पना जनक है। आदर्श प्रारूप में कई आइटम है जिन्हें हम वास्तविकता में पा सकते है। ये आदर्श प्रारूप यथार्थ में भी रूढ़ीवदृ दृष्टि से पाए जा सकते है।

10.3 आदर्श प्रारूप की विशेषता

आदर्श प्रारूप की निम्न विशेषताऐं है।

1- आदर्श प्रारूप वास्तविकता नहीं है।

2- यह एक विवेकी बल्यूप्रिन्ट या खाका है।

3- इसका संबंध नैतिक रूप से किसी आदर्श से नहीं है।

4- इसमें मूल्यों का अभाव पाया जाता है।

5- यह उपकल्पना है।

6- यह न तो सत्य होता है और न झूठ।

7- इसका संबंध विज्ञान की अवधारणा से जुड़ा है।

8- एक ही घटना के अध्ययन के लिए कई आदर्श प्रारूप हो सकते है।

9- इसका आधार मूल्य अभिस्थापन होता है।

10- आदर्श प्रारूप किसी भी घटना की स्पष्ट अभिव्यक्ति का साधन है।

10.4 आदर्श प्रारूप के प्रकार एवं संरचना

प्रत्येक आदर्श प्रारूप अमूर्त होता है। यह अमूर्तिकरण ऐतिहासिक, सामाजिक, यथार्थवादी और तार्किक हो सकता है। मैक्स वेबर ने सामाजिक घटनाओं को यथार्थ रूप में जानने के लिए ही आदर्श प्रारूप का निर्माण किया। यदि हम वेबर के आदर्श प्रारूप को देखे तो यह तीन प्रकार के आदर्श प्रारूप हो सकते है।

1- ऐतिहासिक विशिष्टताओं के आधार पर बने आदर्श प्रारूप

2- सामाजिक यथार्थ के आधार पर बने आदर्श प्रारूप

3- विवेकपूर्ण व्यवहार के आधार पर बने आदर्श प्रारूप

1- ऐतिहासिक विशिष्टताओं के आधार पर बने आदर्श प्रारूप - यूरोप के इतिहास में बहुत ऐसी घटनाए घटी जिसने पूरे यूरोप को परिवर्तित कर दिया जैसे फ्रांस की क्रांति, सामंतवाद, प्रथम विश्व युद्ध आदि। लेकिन वेबर इन सभी घटनाओं से प्रभावित नहीं हुए बल्कि यूरोप में धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों ने इन्हें आदर्श प्रारूप बनाने के लिए प्रेरित किया। इतिहास से जुड़े हुए इन आदर्श प्रारूपों में प्रोटेस्टेण्ड आधार या आधुनिक पूंजीवाद है। वेबर के आदर्श प्रारूप की एक कोटी इस प्रकार ऐतिहासिक विशिष्टताओं और सांस्कृतिक से जुड़ी है।

2- सामाजिक यथार्थता के आधार पर बने आदर्श प्रारूप - वेबर कालीन युग में यूरोप तथा अमेरिका में एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था थी लेकिन औद्योगिक क्रंाति एवं फ्रांस की क्रांति ने यूरोपिय सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था को बदला। पूंजिवाद एवं अधिकारी तंत्र का उदय हुआ। यूरोप की सामंतवादी व्यवस्था यूरोपिय समाज का एक ऐतिहासिह यथार्थ था। इस यथार्थ का अमूर्तिकरण वेबर ने सामंतवाद के आदर्श प्रारूप में किया सामंतवाद का यह यूरोप के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भो में देखने को मिलता है।

3-विवेकपूर्ण व्यवहार के आधार पर बने आदर्श प्रारूप- मैक्स वेबर के उपरोक्त आदर्श प्रारूपों का संबंध विवेक या तार्किक अवधारणाओं से है ऐमझउ एराॅ ने इस तरह के आदर्श प्रारूपों की विशेष प्रकार के व्यवहार को विवेकपूर्ण पुनर्निर्माण कहा है। वेबर के अनुसार आर्थिक गतिविधियों के क्षेत्र से जुड़े हुए सभी आदर्श प्रारूप इस तीसरे प्रकार की कोटी में रखे जाते है।

10.5 सारंश

आदर्श प्रारूप आनुभाविक विश्लेषण की एक पद्धति है। अध्ययन करते समय अनुसंधान कर्ता को जो आनुभाविक घटना के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान है उसे आदर्श प्रारूप में रखा जाता है। इसके माध्यम से जब घटना के बारे में समझ आ जाती है इसी क्षण इसका महत्व समाप्त हो जाता है। सामाजिक यथार्थता की समझने के लिए ही वेबर ने इस अवधारणा को विकसित किया। किसी न किसी रूप मंे सभी प्राकृतिक विज्ञानों में आदर्श प्रारूप होते है। वेबर ने आदर्श प्रारूप का निर्माण यथार्थता को जानने के लिए किया था लेकिन स्वयं आदर्श प्रारूप कभी यथार्थ नहीं

होते। आदर्श प्रारूप नैतिक रूप से आदर्श नहीं है। यह उपकल्पना की तरह है जिस प्रकार उपकल्पना सत्य या असत्य हो सकती है वैसे ही आदर्श प्रारूप भी अपनाया या झुठलाया जा सकता है। आदर्श प्रारूप अध्ययन की विधि है।

10.6 शब्दावली

वस्तुनिष्ठ पद्धति, व्यक्तिनिष्ठ पद्धति, पूंजीवाद, उपकल्पना, नौकरशाही, वस्र्टहेन, सामंतवाद

वस्तुनिष्ठ पद्धति - अध्ययन का एक ऐसा तरीका है जिसमें अनुसंधानकर्ता तटस्थ होकर मानव व्यवहारों का अध्ययन करता है। इसमें समाज सापेक्ष अध्ययन नहीं किया जाता। इसमें नैतिकता, मानक मूल्यों इत्यादि के आधार पर घटना का यथार्थ वर्णन किया जाता है। ये मूल्यविहीन समाजशास्त्र पर बल देती है।

व्यक्तिनिष्ठ पद्धति - इसमें घटना का अध्ययन समाज सापेक्ष किया जाता है सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर इसका अध्ययन किया जाता है। ये मूल्यांकनात्मक, समाजशास्त्र पर बल देती है।

पूजीवाद: यहा बडी-बडी मशीनें और उद्योग उत्पादन के साधन और आर्थिक व्यवस्था के रूप में पाया जाता था। इसके आधार पर दो वर्ग या स्तर पाया जाता था, पॅूजीपति और सर्वहारा वर्ग। इन दोनों के बीच सदैव संघर्ष चलता रहता था। यहा स्तरीकरण पाया जाता था।

उपकल्पनाः उपकल्पना किसी सिद्धांत से जुड़ी अवधारणाओं के बीच के संबंधों की अभिव्यक करने वाला अपरीक्षित कथन है।

वस्र्टहेनः वस्र्टहेन जर्मन भाषा का एक शब्द है जिसका अभिप्राय अन्त्तदृष्टि अथवा व्यक्तिगत बोध या समझ से है जो एक व्यक्ति सामाजिक अन्तक्रिया तथा दूसरों की भूमिकाओं के निर्वहन द्वारा प्राप्त करता है। किसी घटना को अन्त्तदृष्टि द्वारा समझने के प्रयास को कुछ सीमा तक वस्र्टहेन कहा जा सकता है। वेबर के अनुसार ’’वस्र्टहेन एक प्रकार की अन्तः प्रज्ञा है, यह एक प्रकार का सहजबोध है जिसे व्यक्ति जानता तो है किन्तु वह उसे लिखित रूप में प्रस्तुत करने में असमर्थ अनुभव करता है जिसका वैज्ञानिक रूप में लेखा-जोखा देना उसके लिए मुश्किल होता है।

सामंतवादः सामान्यतः सामन्तावद शब्द का प्रयोग ऐसे कुलीन तंत्रीय, सैनिक तथा धर्म प्रधान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के लिए किया जाता है जिसका मध्यकालीन यूरोप में प्रमुख था। किन्तु इससे मिलती जुलती व्यवस्था के साक्ष्य जापान में भी पाए गए है। इस व्यवस्था का जन्म 17वीं शताब्दी में देखने को मिलता है। इसकि विस्तरित व्याख्या मार्क ब्लाच की पुस्तक ’’क्यूडल सोसाइटी’’ में देखने को मिलता है। इस व्यवस्था के अन्त्तगत भूमि का विभाजन छोटी अथवा बड़ी जागीरों के रूप में किया जाता है जो बड़ों सामंतो द्वारा छोटे-छोटे सामंतो /जागिरदारों को इस शर्त पर दी जाती थी कि वे अपने सामंतो के प्रति निष्ठाा रखेंगे और आवश्यकता के समय उन्हें सैन्य सहायता प्रदान करेंगे। भूमि पर कृषि दासों द्वारा की जाती थी।

नौकरशाही: नौकरशाही संस्तरणाव्यक प्रकार का एक संगठन है जिसमें वृहद स्तर पर प्रशासकीय कार्यों को युक्तिसंगतता और औपचारिकता के आधार पर संपादित करने हेतु पद सोयादीय रूप में व्यक्तियों के कार्यो का समन्वय किया जाता है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग संभवतः विंसेट द गौरने द्वारा राज्य द्वारा बढ़ते हुए हस्तक्षेप को इंगित करने के लिए किया गया। समाजशास्त्र में मैक्स वेबर ने इसकि विस्तृत व्याख्या की है।

10.7 संदर्भ ग्रंथ की सूची

1- मैक्स वेबर समाजशास्त्र अध्ययन - एस0एल0 दोषी एण्ड पी0सी0 जैन

2- उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोष - हरिकृष्ण रावत, रावत पब्लिकेशन, जयपुर

10.8 निबंधात्मक प्रश्न

1- मैक्स वेबर के ''आदर्श प्रारूप'' की व्याख्या कीजिए।

2- आदर्श प्रारूप के प्रकार की व्याख्या कीजिए।

इकाई-11 शक्ति और प्राधिकार

Power and Authority

इकाई की रूपरेखा

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 शक्ति और सत्ता की अवधारणाएँ
11.2.1 शक्ति
11.2.2 सत्ता
11.3 सामाजिक क्रिया के प्रकार तथा सत्ता के प्रकार
11.3.1 सामाजिक क्रिया के प्रकार
11.3.2 सत्ता के प्रकार
11.4 सारांश
11.5 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.6 संदर्भ सूची

11.0 प्रस्तावना

इस इकाई में शक्ति और सत्ता को समझने में वेबर के महत्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डाला जाएगा। पहले भाग में हमने शक्ति और सत्ता की समाजशास्त्रीय अवधारणाओं का संक्षेप में विवेचन किया है जिसमें इन शब्दों के संबंध में वेबर की दृष्टि की विशेष चर्चा की गई है, दूसरे भाग में वेबर द्वारा बताए गए सामाजिक क्रिया के प्रकारों की चर्चा की गई है। सत्ता के प्रकारों मुख्यतः पारंपरिक, करिश्माई तथा तर्क विधिक सत्ता का उल्लेख किया गया है। तीसरे भाग में हमने अपनी विवेचना और नौकरशाही पर केंद्रित की है जो तर्क विधिक सत्ता को प्रयोग में लाने का एक प्रमुख उदाहरण है।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपके लिए संभव होगा:

1. शक्ति और सत्ता की मैक्स वेबर द्वारा परिभाषित अवधारणाओं को समझना,
2. वेबर के सामाजिक क्रिया के प्रकारों और सत्ता के प्रकारों के बीच संबंध को स्पष्ट करना,
3. सत्ता के तीन प्रकारों पारंपरिक, करिश्माई और तर्क-विधिक की विस्तार से व्याख्या करना, और

11.2 शक्ति और सत्ता की अवधारणाएँ

आइए, हम इन मुख्य अवधारणाओं का व्यापक समाजशास्त्रीय दृष्टि तथा वेबर की विशिष्ट दृष्टि से विश्लेषण करें।

11.2.1 शक्ति

सामान्य प्रयोग में ''शक्ति'' शब्द का अर्थ है ताकत अथवा नियंत्रण की क्षमता। समाजशास्त्री इसकी परिभाषा एक व्यक्ति अथवा समूह की अपनी इच्छा पूर्ण करने तथा अपने निर्णयों एवं विचारों को कार्यान्वित करने के सामथ्र्य के रूप में करते हैं। इसमें दूसरों की इच्छा के विपरीत भी उन्हें प्रभावित करने अथवा उनके आचरण को नियंत्रित करने की क्षमता निहित है।

मैक्स वेबर के अनुसार, शक्ति सामाजिक संबंधों का एक पहलू है। इसका संबंध एक व्यक्ति द्वारा दूसरे के आचरण पर अपनी इच्छा थोपने की संभावना से है। शक्ति का अस्तित्व सामाजिक अन्तक्रियरा में है और यह असमानता की स्थितियाँ पैदा करती है क्योंकि जिसके हाथ में शक्ति है वह इसे दूसरों पर थोपता है। शक्ति का प्रभाव अलग-अलग स्थिति में अलग-अलग होता है। एक ओर यह प्रभाव शक्तिशाली व्यक्ति की क्षमता पर निर्भर करता है। वेबर की मान्यता है कि जीवन के सभी क्षेत्रों में शक्ति का प्रयोग संभव है।

यह युद्ध क्षेत्र अथवा राजनीति तक ही सीमित नहीं है। इसे बाजार, भाषण मंच तथा किसी सामाजिक समारोह, खेल-कूद, वैज्ञानिक गोष्ठियों और यहाँ तक कि परोपकार की गतिविधियों में भी देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए दान अथवा भिक्षा देना अपनी आर्थिक शक्ति प्रदर्शित करने का एक सूक्ष्म तरीका है। एक अमीर व्यक्ति अपनी आर्थिक शक्ति द्वारा भिखारी को कुछ देकर उसे खुश कर सकता है और इंकार करके उसे निराश भी कर सकता है। शक्ति के स्रोत क्या हैं? वेबर ने शक्ति के दो परस्पर-विरोधी स्रोतों का उल्लेख किया है। ये इस प्रकार हैं:

क) वह शक्ति जो औपचारिक मुक्त बाजार में पनपने वाले हितों के मेल से प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए चीनी उत्पादकों का एक समूह अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने के लिए अपने उत्पादन की सप्लाई को नियंत्रित करता है।

ख) सत्ता की एक स्थापित प्रणाली, जो आदेश देने के अधिकार तथा उसके पालन के कर्तव्य का निर्धारण करती है। उदाहरण के लिए सेना में एक जवान अपने अधिकारी का आदेश मानने को बाध्य है। अधिकारी को आदेश देने की शक्ति- सत्ता की स्थापित प्रणाली से मिली है।

जैसा कि आपने दूसरे विषय में देखा, शक्ति की चर्चा करते समय हमें उसकी वैधता पर विचार करना पड़ता है। वेबर के अनुसार, यही वैधता सत्ता का मूल पक्ष है। आइए अब हम सत्ता की अवधारणा पर विचार करें।

11.2.2 सत्ता

सत्ता के लिए वेबर द्वारा प्रयुक्त जर्मन शब्द ''हैरशाफ्ट'' (herrschaft) का अनुवाद कई रूपों में हुआ है। कुछ समाजशास्त्रियों ने इसे सत्ता (authority) कहा है, जबकि कुछ विद्वानों ने इसका अनुवाद ''प्रभुत्व'' (doination) अथवा ''आदेश'' (command) किया है। ''हैरशाफ्ट'' का अर्थ है, ऐसी स्थिति जिसमें ''हैर'' (herr) अथवा स्वामी अन्यों पर प्रभुत्व जमाता है अथवा हुक्म चलाता है। रेमों आरों के अनुसार, हैरशाफ्ट की परिभाषा स्वामी की वह क्षमता, जिससे वह उन लोगों से आज्ञापालन करवाता है जो सैद्धांतिक रूप से उसके प्रति आज्ञाकारी हैं (ऐरो, 1967: 187)। इस इकाई में हमने वेबर की ''हैरशाफ्ट'' की अवधारणा को सत्ता (authority) शब्द द्वारा व्यक्त किया है।

यह प्रश्न किया जा सकता है कि शक्ति (power) और सत्ता (authority) में क्या अंतर है। जैसा कि आपने पढ़ा, शक्ति का अर्थ है किसी अन्य को नियंत्रित करने की योग्यता अथवा क्षमता। सत्ता से अभिप्राय है-वैध शक्ति। इसका अर्थ है कि स्वामी को समादेश देने का अधिकार है और वह उसके अनुपालन की अपेक्षा कर सकता है।
आइए, अब हम उन तत्वों का विवेचन करें, जो सत्ता को निरूपित करते हैं।

बोध प्रश्न 1

(i) शक्ति की परिभाषा दीजिए।

....
....

(ii) सत्ता का अर्थ बताइये।

....
....

11.3 सामाजिक क्रिया के प्रकार तथा सत्ता के प्रकार

मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र को सामाजिक क्रिया का व्यापक विज्ञान बताया है (ऐरो, 1967: 187)। वेबर ने सामाजिक क्रिया का जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, उसकी हमने संक्षेप में विवेचना की है।

11.3.1 सामाजिक क्रिया के प्रकार

वेबर ने सामाजिक क्रिया के चार प्रमुख प्रकार बताए हैं। ये हैं:

i) **किसी लक्ष्य के संदर्भ में तार्किक क्रिया अथवा स्वैकरैशनल (zweckrational) क्रिया:** इसका एक उदाहरण है पुल का निर्माण कर रहा एक इंजीनियर। वह अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कुछ सामग्री को किसी

खास तरीके से इस्तेमाल करता है। उसकी गतिविधियाँ अपने लक्ष्य यानि निर्माण को पूरा करने की दिशा में संचालित होती है।

ii) **किसी मूल्य के संदर्भ में तार्किक क्रिया अथवा वैर्टरैशनल (wertrational) क्रिया:** इस क्रिया में अपने देश के लिए अपने प्रमाण न्यौछावर करने वाले सैनिक का उदाहरण दिया जा सकता है। उसकी क्रिया धन-दौलत की प्राप्ति जैसे किसी भौतिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि गौरव और देश-भक्ति जैसे विशिष्ट मूल्यों के लिए है।

iii) **भावात्मक क्रिया:** इस प्रकार की क्रिया व्यक्ति की भावात्मक स्थिति के फलस्वरूप होती है। जैसे कि बस में यदि कोई व्यक्ति किसी लड़की से छेड़खानी करता है तो वह लड़की नाराज होकर उसको थप्पड़ मार देती है।

iv) **परम्परागत क्रिया:** यह क्रिया उन परम्पराओं और विश्वासों से प्रेरित होती है, जो हमारे स्वभाव का अंग बन गए हैं। परम्परागत भारतीय समाज में बड़ों को प्रणाम अथवा नमस्कार करना एक तरह से स्वभाव का अंग है और सहज ही ऐसा हो जाता है।

यह देखा जा सकता है कि सामाजिक क्रिया के उपर्युक्त वर्गीकरण की झलक वेबर की सत्ता की अवधारणा के वर्गीकरण में भी मिलती है। इसकी चर्चा हमने अगले उपभाग में की है।

11.3.2 सत्ता के प्रकार

वेबर के अनुसार वैधता की तीन प्रणालियाँ हैं, और इनमें से प्रत्येक के अनुरूप नियम हैं, जो आदेश देने की शक्ति को औचित्य प्रदान करते हैं। वैधता की इन्हीं तीन प्रणालियों को सत्ता के प्रकारों का नाम दिया गया है। ये हैं:

i) पारम्परिक सत्ता

ii) करिश्माई अथवा चमत्कारिक सत्ता

iii)तर्क-विधिक सत्ता

आइए, अब हम तीनों प्रकारों का विस्तार से विवेचन करें।

1) पारम्परिक सत्ता

वैधता की यह प्रणाली पारम्परिक सामाजिक क्रिया से निरूपित होती है। दूसरे शब्दों में यह व्यावहारिक कानून पर तथा प्राचीन परम्पराओं की मान्यता पर आधारित है। इसका आधार यह विश्वास है कि किसी विशेष सत्ता का सम्मान किया जाना चाहिए क्योंकि वह युग-युगान्तरों से चली आ रही है।

पारंपरिक सत्ता के अंतर्गत शासक पीढ़ी दर पीढ़ी मिली प्रस्थिति के कारण व्यक्तिगत सत्ता का उपभोग करते हैं। उनके आदेश रीति-रिवाज़ों के अनुरूप होते हैं और उन्हें शासित लोगों से अपना आदेश मनवाने का भी अधिकार होता है। प्रायः वे अपनी शक्ति का दुरूपयोग करते हैं। जो लोग उनके आदेशों का पालन करते हैं, वे उनकी प्रजा कहलाते हैं। यह प्रजा व्यक्तिगत निष्ठा के कारण अथवा प्राचीन कला से मान्यता प्राप्त पद के प्रति पवित्र सम्मान के कारण अपने स्वामी के आदेशों का पालन करती है। आइए, अब हम इस संबंध में अपने समाज का ही एक उदाहरण लें। आप भारत में प्रचलित जाति-प्रथा से भली-भांति परिचित हैं। ''निम्न'' जातियाँ सदियों तक ''उच्च'' जातियों के अत्याचार क्यों सहती रहीं? इसका एक स्पष्टीकरण यह हो सकता है कि ''उच्च'' जातियों की सत्ता को परम्पराओं तथा प्राचीन मान्यताओं का समर्थन प्राप्त था। कुछ लोगों का कहना है कि ''निम्न'' जातियों ने अपने दमन को सामाजिक स्वीकृति दे दी थी। इस प्रकार यह देखा जाता है कि पारंपरिक सत्ता प्राचीन परम्पराओं को पवित्र मानने के विश्वास पर आधारित है। इससे सत्ता का इस्तेमाल करने वालों को वैधता प्राप्त हो जाती है।

पारंपरिक सत्ता का संचालन लिखित-नियमों और विधानों के अंतर्गत नहीं होता। यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी विरासत में मिलता है। पारंपरिक सत्ता का कार्यान्वयन सगे- संबंन्धियों तथा समर्थकों के बल पर किया जाता है।

आधुनिक युग में पारंपरिक सत्ता में क्षीणता आई है। पारंपरिक सत्ता का सर्वाधिक सशक्त उदाहरण राजतंत्र ;उवदंतबीलद्ध अभी प्रचलित है, किन्तु उसका स्वरूप अब काफी दुर्बल हो चुका है। इंग्लैंड की महारानी पारंपरिक सत्ता का प्रतिनिधित्व करती है, किन्तु जैसा कि आपको मालूम होगा वह अपनी सत्ता का वास्तविक प्रयोग नहीं करती। इंग्लैंड के कानून महारानी के नाम पर लागू किए जाते हैं किन्तु इन कानूनों का निर्माण जनता के प्रतिनिधि अर्थात् संसद सदस्य करते हैं। महारानी के अधीन संसद है, जो देश का शासन चलाती है, किन्तु वह मंत्रियों की नियुक्ति नहीं करती। वह नाम मात्र की राज्याध्यक्ष है।

संक्षेप में, पारंपरिक सत्ता को वैधता प्राचीन परम्पराओं से प्राप्त होती है, जो कुछ लोगों को आदेश देने की क्षमता प्रदान करती है तथा अन्य लोगों को उनका पालन करने को बाध्य करती है। यह सत्ता विरासत में मिलती है और इसके लिए लिखित विधानों की आवश्यकता नहीं होती। शासक अपनी सत्ता का इस्तेमाल अपने समर्थक संबंधियों एवं मित्रों की सहायता से करते हैं। वेबर ने इस प्रकार की सत्ता को तर्कहीन माना है। इसलिए आधुनिक विकसित समाज में यह सत्ता बहुत कम पाई जाती है।

2) करिश्माई अथवा चमत्कारिक सत्ता

करिश्मा अथवा चमत्कार का अर्थ है कुछ व्यक्तियों के असाधारण गुण। ऐसे गुण से इन व्यक्तियों में सामान्य लोगों की निष्ठा तथा भावनाओं पर अधिकार कर लेने की क्षमता आ जाती है। करिश्माई सत्ता किसी व्यक्ति के प्रति असाधारण आस्था और उस व्यक्ति द्वारा बताई गई जीवन-शैली पर आधारित होती है। ऐसी सत्ता की वैधता व्यक्ति की अलौकिक अथवा मायावी शक्ति में निहित होती है। ऐसे नेता चमत्कारों, सैनिक या अन्य प्रकार की विजयों अथवा अपने अनुयायियों की आकस्मिक समृद्धि के माध्यम से अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। जब तक ये

करिश्माई नेता अपने अनुयाइयों अथवा समर्थकों की नज़र में अपनी चमत्कारिक शक्तियों को सिद्ध करते रहते हैं, तब तक उनकी सत्ता बराबर बनी रहती है। आपने महसूस किया होगा कि करिश्माई सत्ता से जो सामाजिक क्रिया जुड़ी है, वह भावात्मक क्रिया है। करिश्माई नेताओं के प्रवचनों तथा उपदेशों के प्रभाव से समर्थक अत्यन्त भावुक हो जाते हैं। यहाँ तक कि वे अपने नेता की पूजा तक करते हैं।

करिश्माई सत्ता परंपरागत विश्वासों अथवा लिखित नियमों पर आधारित नहीं होती। यह अपनी विशेष क्षमता के बल पर शासन करने वाले नेता के विशेष गुणों का ही परिणाम होती है। करिश्माई सत्ता संगठित नहीं होती, अतः इसमें कर्मचारियों अथवा प्रशासनिक तंत्र की आवश्यकता नहीं होती। नेता और उसके सहयोगियों का अपना कोई निश्चित व्यवसाय नहीं होता और वे प्रायः पारिवारिक दायित्वों से विमुख रहते हैं। ये गुण कभी-कभी चमत्कारिक व्यक्तियों को क्रांतिकारी भी बना देते हैं, क्योंकि वे सभी पराम्परागत सामाजिक प्रतिमानों तथा दायित्वों को अस्वीकार कर चुके होते हैं।

व्यक्तिगत गुणों पर आधारित होने के कारण सम्बद्ध नेता की मृत्यु अथवा उसके लापता होने की स्थिति में उत्तराधिकार की समस्या पैदा होती है। जो व्यक्ति नेता का स्थान लेता है, संभव है उसमें वैसी चमत्कारिक शक्ति न हो। ऐसी स्थिति में नेता का मूल संदेश लोगों तक पहुँचाने के लिए जब किसी प्रकार का संगठन विकसित होता है तब मूल करिश्माई सत्ता या तो पारंपरिक सत्ता या तर्क-विधिक सत्ता का रूप ग्रहण कर लेती है। वेबर के अनुसार यह करिश्मा अथवा चमत्कार का सामान्यीकरण है।

यदि चमत्कारिक नेता का पुत्र, पुत्री अथवा कोई निकट संबंधी उसका उत्तराधिकारी बनता है तब पारंपरिक सत्ता का अस्तित्व बना रहता है। किन्तु यदि चमत्कारिक गुणों का स्पष्ट उल्लेख होता है या वे लिखित रूप में मौजूद होते हैं तो वह तर्क- विधिक सत्ता के रूप में बदल जाती है जिसके अंतर्गत इन गुणों से सम्पन्न कोई भी व्यक्ति नेता बना सकता है। इस प्रकार करिश्माई सत्ता को अस्थिर एवं अस्थायी माना जा सकता है। हमारे समाज में करिश्माई नेताओं के उदाहरण समूचे इतिहास में मौजूद रहे हैं। सन्त, पैगम्बर तथा कुछ राजनेता ऐसी ही सत्ता के उदाहरण हैं उदाहरणतः कबीर, नानक, ईसा मसीह, मोहम्मद पैगम्बर, लेनिन और महात्मा गाँधी आदि। लोग उनका सम्मान पारंपरिक सत्ता या तर्क-विधिक सत्ता के कारण नहीं बल्कि उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं तथा उनके द्वारा दिए गए संदेश और उपदेश के कारण करते थे। आइए अब हम मैक्स वेबर द्वारा बताए गए सत्ता के तीसरे प्रकार की व्याख्या करें।

बोध प्रश्न 2

सही उत्तर बनाइए

i) वेबर के अनुसार निम्नलिखित में से कौन सा सत्ता का प्रकार नहीं है:

क) पारंपरिक सत्ता

ख) तर्क-विधिक सत्ता

ग) करिश्माई अथवा चमत्कारिक सत्ता

घ) व्यक्तिगत सत्ता

ii) जब किसी नेता की मूल करिश्माई अथवा चमत्कारिक क्षमता पारंपरिक अथवा तर्क-विधिक सत्ता में बदल जाती है तो वेबर के अनुसार यह स्थिति है:

क) करिश्मा अथवा चमत्कार का समान्यीकरण
ख) सत्ता का सामान्यीकरण
ग) नेतृत्व का सामान्यीकरण
घ) शक्ति का सामान्यीकरण

iii)पारंपरिक सत्ता को किसके द्वारा वैधता मिलती है:

क) देश का कानून
ख) प्राचीन परंपराएँ
ग) नेता की श्रेष्ठ उपलब्धियाँ
घ) उपर्युक्त सभी।

3) तर्क विधिक-सत्ता

यह शब्द सत्ता की उस प्रणाली का बोध कराता है, जो तार्किक भी है तथा कानूनी भी। यह सत्ता नियमित कर्मचारी वर्ग में निहित है, जो कुछ लिखित कानूनों एवं नियमों के अंतर्गत काम करते हैं। जो लोग इस सत्ता का प्रयोग करते हैं, उन्हें इसी काम के लिए नियुक्त किया जाता है और ये नियुक्ति उनकी योग्यताओं के आधार पर की जाती है। ये योग्यताएँ निर्धारित तथा संहिताबद्ध होती हैं। जिनके पास यह सत्ता होती है, उनका यह व्यवसाय होता है तथा वे इसके लिए वेतन पाते हैं। इस प्रकार यह एक तार्किक प्रणाली है।

यह वैधानिक इसलिए है क्योंकि यह देश के कानून के अनुरूप है जिसे लोग मान्यता देते हैं और उसका पालन करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। लोग आदेशों और नियमों तथा उन नियमों को कार्यान्वित करने वालों की स्थिति तथा पद दोनों की वैधता को स्वीकार करते हैं एवं उसका सम्मान करते हैं।

तर्क-विधिक सत्ता आधुनिक समाज का विशिष्ट पहलू है। यह तार्किकता की प्रक्रिया की अभिव्यक्ति है। हमें याद रखना चाहिए कि वेबर ने तार्किकता को पश्चिमी सभ्यता की मुख्य विशेषता माना है। वेबर के अनुसार यह मानव चिंतन तथा विचार -विमर्श की विशेष देन है। अब तक आपने तर्क-विधिक सत्ता तथा लक्ष्य प्राप्त करने के लि तार्किक क्रिया के परस्पर संबंध को भली प्रकार समझ लिया होगा।

आइए, अब हम तर्क-विधिक सत्ता के उदाहरणों को देखें। सभी लोग कर समाहर्ता ;जंग.बवससमबजवतद्ध की आज्ञा मानते हैं क्योंकि उसके द्वारा जारी किए जाने वाले आदेश की वैधता में सब को विश्वास है। यह भी मान्य है कि उसे लोगों को कर संबंधी नोटिस भेजने का कानूनी अधिकार है। जब ट्रैफिक पुलिस वाला लोगों को गाड़ी रोकने

का इशारा करता है तो वे अपना वाहन इसीलिए रोक देते हैं क्योंकि वे कानून द्वारा उसे दिए गए अधिकार का सम्मान करते हैं। आधुनिक समाज में व्यक्ति का नहीं, बल्कि कानूनों एवं अध्यादेशों का शासन चलता है। लोग पुलिस मैन का कहना उसके पद और वर्दी के कारण मानते हैं, जो कानून का प्रतिनिधित्व करती है। वे उसका कहना इसलिए नहीं मानते कि वह श्रीमान ''क'' अथवा ''ख'' नाम का व्यक्ति है। तर्क-विधिक सत्ता केवल राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में नहीं, बल्कि बैंक, उद्योग आदि आर्थिक क्षेत्रों तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक संगठनों मे भी चलती है।

सामाजिक क्रिया तथा सत्ता के प्रकारों के बारे में उपर्युक्त चर्चा के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि पारंपरिक सत्ता का संबंध परम्परागत क्रिया से, तर्क-विधिक का संबंध लक्ष्य के संदर्भ में तार्किक क्रिया से और करिश्माई सत्ता का संबंध भावात्मक क्रिया से है। परन्तु एक बात साफ नज़र आती है कि वेबर ने सामाजिक क्रिया के चार प्रकार और सत्ता के केवल तीन प्रकार बताए हैं। सामाजिक क्रिया और सत्ता के वर्गीकरण में यह अंतर चर्चा का विषय हो सकता है।

तर्क-विधिक सत्ता के संचालन के ढंग को अच्छी तरह से समझने के लिए ''नौकरशाही'' का विवेचन करना आवश्यक है। नौकरशाही के माध्यम से ही तर्क- विधिक सत्ता को कार्यान्वित किया जाता है। अगले भाग में इसी विषय की विवेचना की गई है।

11.4 सारांश

इस इकाई के प्रारंभ में हमने ''शक्ति'' और ''सत्ता '' के बारे में वेबर की अवधारणाओं पर चर्चा की। इसके बाद वेबर द्वारा बताए गए सामाजिक क्रिया के प्रकारों तथा सत्ता के प्रकारों का विवेचन किया गया। हमने पारंपरिक, करिश्माई अथवा चमत्कारिक एवं तर्क-विधिक सत्ता का अध्ययन किया। अंत में हमने उस तंत्र अर्थात् नौकरशाही के पहलुओं पर ध्यान दिया, जिसके माध्यम से तर्क-विधिक सत्ता का संचालन होता है। हमने नौकरशाही में अधिकारी वर्ग की विशेषताओं का भी अध्ययन किया।

11.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) शक्ति सामाजिक संबंधों का एक पहलू है। इसका संबंध एक व्यक्ति द्वारा दूसरे के आचरण पर अपनी इच्छा थोपने की संभावना से है।

ii) सत्ता का अर्थ है, ऐसी स्थिति जिसमें ''हैर'' (herr) अथवा स्वामी अन्यों पर प्रभुत्व जमाता है अथवा हुक्म चलाता है।

बोध प्रश्न 2

i) घ
ii) क
iii)ख

11.6 संदर्भ सूची

1. ऐरो, रेमण्ड, 1967: मेन करंटस इन सोशियोलोजिकल थॉट, वाल्यूम-2, लन्दन, पेंगुइन बुक्स।

2. बेन्डिक्स, रैनहाई, 1966: मैक्स वेबर; एन इंटलैक्चुअल पोर्टरेट, लन्दन, हाइनमन।

3. फ्राएंड, जूनियन, 1968: द सोशियोलाजी आफ मैक्स वेबर, न्यूयार्क, रैंडम हाउस।

4. गिडेन्स, एंथनी, 2006: पूँजीवाद और आधुनिक सामाजिक सिद्धान्त, दिल्ली, ग्रंथ शिल्पी।

5. ESO-03, 1991: सामाजशास्त्रीय सिद्धांत, इन्दरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ।

इकाई -12 मैक्स वेबर: धर्म का सिद्धांत

(Theory of Religion)

इकाई रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 मैक्स वेबर का जीवन परिचय

12.3 मैक्स वेबर की कृतियाँ

12.4 मैक्स वेबर का प्रमुख सिद्धांत

12.5 धर्म का सिद्धांत

12.6 सारंश

12.7 शब्दावली

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.10 निबंधात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

इस इकाई में हम मैक्स वेबर के धर्म के सिद्धांत के बारे में जानने का प्रयास करेंगे। वेबर ने अपने अनुसंधानों तथा कृतियों में अनुभावकि अध्ययन पर अधिक बल दिया है। इन्होनें अपने अध्ययन में जर्मनी के खेतिहर मजदूरों एवं स्टाक एक्सजेन्च का उपयोग करते है और इसी आधार पर अपनी अवधारणाओं और समस्याओं को निर्मित करते है। वे अपने प्रोटेस्टेण्ट इथिक के अध्ययन का श्रोत भी इन्हीं दोनो का अनुभाविक अध्ययन पर करते है। इसी अध्ययन के परिणाम स्वरूप वेबर ने धर्म के समाजशास्त्र को प्रकाशित करते है और विश्व के प्रमुख धर्मो जैसे कन्फ्युशियस, हिन्दू, बौध, इसाई और यहूदी धर्म का अध्ययन करते है।

मैक्स वेबर धर्म की अध्ययन समाजशास्त्रीय सिद्धांत में अग्रणी है। एक प्रकार से देखा जाए तो वेबर विश्व के प्रमुख सम्मताओं का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते थे। इसी का परिणाम रहा कि वे धर्म के समाजशास्त्री ये सिद्धांत को विकसित करते है और विश्व के 6 महान धर्मो का अध्ययन करते है और बताते है कैसे धर्म देश की आर्थिक प्रगति में अपना महत्व रखता है और ये भी बताते है कि धर्म में कुछ ऐसे तत्व होते है या आचार होते है जो देश की विकास की ओर ले जाते है। मैक्स वेबर ने धर्म के अध्ययन में यह देखने का प्रयास किया कि विभिन्न सम्मताओं के विकास में धर्म संबधि कारकों की क्या भूमिका है। इस इकाई में हम यह भी जानने का प्रयास करेंगे की पूंजी वाद के विकास धर्म की विशेष रूप से प्रोटेस्टेण्ट नैतिकता और पूंजीवाद की आत्मा के बीच क्या संबंध है। साथ ही साथ यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि प्रोटेस्टेण्ड नैतिकता ने कैसे यूरोप में पूजीवाद का विकास किया।

12.1 उद्देश्य

1- धर्म का अर्थ और परिभाषा, धर्म के समाज शास्त्र के प्रमुख आधार, धर्म के प्रकार

2- विश्व के 6 महान धर्मो के बारे में तथा आर्थिक गतिविधियों में उनका योगदान

3- प्रोटेस्टेण्ड नैतिकता और पूंजीवाद की आत्मा के बीच संबंध

12.2 धर्म का अर्थ एवं परिभाषा –

धर्म का अंगेजी शब्द रेलिजन संभवतः लेटिन शब्द लिजोर से बना है। जिसका अर्थ है आपस में बांधना या एक सूत्र में पिरोना, धर्म की समाजशस्त्रीय उद्देश्यों से परिभाषित करना अत्यंत कठिन है क्योंकि इसके साथ अनेका अनेक विश्वास और कर्मकाण्ड जुडे है। यही नहीं धर्म आदशत्मिक महत्व का है जो इसकी वस्तुपरक परिभाषा में बाधक हैं। धर्म एक सामाजिक संस्था है जिसका तानाबाना अधिदैविक शक्तियों एवं मानव के साथ संबंध के विचार के आधार पर है। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्षय मं◌े धर्म को मुख्यतः दो रूपों में परिभाषित किया गया है।

1- तात्विक दृष्टिकोण - एवं 2 - प्राकयित्मक दृष्टिकोण

तात्विक दृष्टिकोण से धर्म की परिभाषा धर्म ''क्या है'' के आधार पर किया जाता है जबकि प्राकयित्मक दृष्टिकोण से परिभाषा धर्म की समाज में भूमिका क्या है के रूप में किया जाता है।

ई.वी. टायलर ने धर्म की व्याख्या तात्विक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया और बताया कि धर्म देवी देवताओं तथा अन्य अधिमानवीय प्राणियों जैसे पूर्वजों अथवा आत्माओं के प्रति विश्वास तथा उनसे संबंधि कर्मकाण्ड की एक व्यवस्था है। वही दुर्खीम के अनुसार धर्म पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वास तथा कर्मकाण्डों की एक संगठित व्यवस्था है जो उन व्यक्तियों को एक एकल सामाजिक-नैतिक समुदाय में बांधता है जो इसका अनुसरण करते है।

सामान्य रूप से धर्म मानवीय जीवन के अज्ञात एवं अज्ञेय पक्षों जैसे जीवन, मृत्यु, और इसके अस्तित्व के रहस्यों की जानने तथा उनके साथ व्यवहार करने का तरीका है।

धर्म के समाजशास्त्र के प्रमुख आधार -मैक्स वेबर के धर्म के समाजशास्त्र के प्रमुख आधार है -

1-धार्मिक तथा आर्थिक घटनाए एक दूसरे से संबंधित और एक दूसरे से प्रभावित एवं निर्भर है।

2- हमें एकतरफा दृष्टिकोण पद्धति आदि से बचना चाहिए। इतिहास की आर्थिक व्याख्या तथा सामाजिक घटनाओं की धार्मिक आधार पर की गई व्याख्या दोनों एक दूसरे से संबंधित व एक दूसरे पर आधारित है। इसके अलावा अन्य कारक भी मानव समाज के लिए उत्तरदायी है।

3- अध्ययन पद्धति के आधार पर इनमें से किसी एक कारक की एक परिवर्तन तत्व माना जा सकता है। मैक्स वेबर के धार्मिक कारककों आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव को मालूम करने का प्रयास किया गया है।

4- वेबर के अपने अध्ययन में विश्व के छः महान धर्मो से संबंधित तत्वों का स्पष्टीकरण न करके ़ केवल 'आदर्श प्रारूपों' को निश्चित रूप से तथक करते हुए उनके कारण का प्रभाव तथा महत्व की व्याख्या की।

वेबर ने धार्मिक कारक को एक परिवर्तन का तत्व मानकर धर्म के आर्थिक आचारों को अपने अध्ययन का आधार बताया एवं इसी आधार पर जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को खोजने का प्रयत्न किया।

12.3 धर्म के प्रकार

मैक्स वेबर के धार्मिक व्यवहारों का संबंध धार्मिक प्रकारों से किया है। हमारे देश में धार्मिक व्यवहारों को लौकित एवं परलौकिक व्यवहार के रूप में देखते है। परलौकिक व्यवहार का संबंध मोक्ष से है जबकि लौकिक व्यवहार का संबंध कार्मकाण्ड से है। वेबर ने धर्म के दो प्रकार बताए है -

1- विश्वास मूलक धर्म

2- कर्मकाण्ड से जुडा धर्म

विश्वास मूलक धर्म या मुतिन धर्म -धर्म का संबंध व्यवहार से है जब मोक्ष प्राप्ति के लिए व्यक्ति मानव व्यवहार करता है तो इसका कारण उसकी स्वयं की पवित्र दृढ़ धारणाऐं है जिसके कारण वह तपस्या करता है। ऐसा करके वह अपनी दृढ़ धारणा के कारण वह सब कुछ करता है इस प्रकार नीतिशास्त्रीय दृष्टि से अपने आप में अमूल परिवर्तन लाता है। मोक्ष मिल जाए उसके लिए उपवास, एकाग्रता आदि करता है। वे धर्मावलम्बी जिनकी क्रियाऐं मोक्ष से जुड़ी होती इनका व्यवहार नीतिशास्त्रीय हो जाता है। यदि हम मुक्ति धर्म के अनुयायियों को देखे तो इनका प्रयास अतिप्राकृत को प्राप्त करने का होता है, ऐसे लोग अपने आपको परमात्मा के प्रतिनिधि, मानते है। वेबर ऐसे लोगों को मध्यम स्थिति में मानते हैं। ये अनुयायी सामान्य जीवन से ऊपर उठे होते है और असाधरण धार्मिक जीवन से नीचे होते है।

2- कर्मकाण्ड से जुड़ा धर्म - यह धर्म का दूसरा प्रकार है। इस धर्म के अनुयायी प्रत्येक अर्थो में कर्मकाण्डी होते है। ये दुनिया के प्रत्येक गतिविधीयों को स्वीकार करते है और इसके अनुसार अपना अनुकुलन करते है। चीन का

कन्फ्यूशियस धर्म तथा यहूदी धर्म इसके सबसे अच्छे उदाहरण है। ये ऐसे धर्म है जो एक सम्प्रदाय की तरह स्थापित है और इनके विश्वास और धारणाए रूढीवादी है। इनके लिए धर्म के जो भी नियम है, पवित्र है।

12.4 मैक्स वेबर का जीवन परिचय

मैक्स वेबर का जन्म 21 अप्रैल 1864 को एरफर्ड नामक शहर जर्मनी में हुआ। इनके पिता पेशे से वकिल एवं सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन मे भी सक्रिय थे। मैक्स वेबर ने कानून की पढ़ाई की। वेबर के जीवन पर उनके मौसा-मौसी का प्रभाव बहुत था। वे इनके लोकतंत्र, उदारवाद, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विचारों से प्रभावति थे। वेबर ने बर्लिन विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पी0एच0डी0 की एवं वकालत के साथ-साथ विश्वविद्यालय में शिक्षक भी रहे। 18126 में हीडलबर्ग विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर बने। इस दौरान वे कई विद्वानों के सम्पर्क मे आए जिसमें जार्ज जेलेनक और अर्नेस्ट ट्रायलश प्रमुख है। 11204 मं अमेरिका की कला और विज्ञान कांग्रेस में एक निबंध पढ़ने के लिए इन्हें आंमत्रित किया गया जहा इन्होने जर्मनी की सामाजिक संरचना पर व्याख्या दी। लगभग तीन माह तक अपने अमेरिका प्रवास के दौरान यहा की व्यवस्था से प्रभावित हुए। वेबर ने अपने सिद्धांत पूंजीवाद के उदय में प्रोटेस्टेर समुदाय की भूमिका, राजनैतिक व्यवस्था में संगठन, नौकरशाही की चर्चा की। ये सब अमेरिका प्रवास से प्रभावित था। 11204 में वेबर ने वरेनर सोम्बार्ट और एडगर जोर्फे के साथ मिलकर आरकीव फूवेर सोजिअल वीसेन साफ्ट एण्ड सोजिया फेलिटिक नामक समाज विज्ञान का अकादमिक पत्रिका का प्रकाशन आरंम्भ किया। यह शीघ्र ही समाजिक विज्ञान के क्षेत्र में जर्मनी का प्रमुख अकादमिक जनरल बन गया। 11210 में वेबर ने फर्डिनेंड टानीज, जार्ज सिमेल, राबर्ट मिचेल्स आदि के साथ मिलकर जर्मन समाजशास्त्र परीषद का गठन किया तथा लम्बे समय तक इसके सचिव रहे।

12.5 मैक्स वेबर की कृतिया

1- The Protestant Ethics and the Spirit of Capitalism

2- The Theory of Economics and Social Organization

3- General Economics Theory

4- The City

5- The Hindu Social System

6- The Religion of China

7- Ancient Indians

8- Methodology of Social Sciences

12- Sociology of Religion

12.6 मैक्स वेबर के प्रमुख सिद्धांत

1- आदर्श प्रारूप

2- शक्ति एवं सत्ता का सिद्धांत

3- सामाजिक क्रिया का सिद्धांत

4- नौकरशाही

5- धर्म का समाजशास्त्र

12.7 धर्म का सिद्धांत -

मैक्स वेबर ने 11204 से धर्म के संबंध में लिखना आंरम्भ किया तथा अपने जीवन के अंतिम दिनों तक धर्म के बारे में लिखते रहे। वेबर का धर्म के संबंध में बताए गए मुख्य विषय धर्म में दिए गए विषयनिष्ठ अर्थ के संबंध में है। वेबर के अनुसार धार्मिक जीवन और आर्थिक घटनाओं के बीच प्रत्यक्ष संबंध है। इनका मानना है कि धार्मिक परिस्थितियों, आर्थिक परिस्थितियों को प्रभावित करती है। इनका मानना है कि समाज में होने वाले परिवर्तनों में धार्मिक कारक भी महत्वपूर्ण होते है। इन्हें माक्र्स के द्वारा प्रतिपादित आर्थिक निर्धारणवाद को गलत साबित किया। जैसा कि कार्ल माक्र्स ने कहा कि सामाजिक परिवर्तन में आर्थिक कारक सबसे महत्वपूर्ण है। जब अर्थव्यवस्था बदलती है तो समाज भी बदल जाता है। वेबर कार्ल माक्र्स के सामाजिक परिवर्तन को संशोधित करते हुए कहते है कि माक्र्स के अनुसार आर्थिक व्यवस्था सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक हो सकता है किन्तु एकमात्र आधार नहीं हो सकता क्योकि धर्म भी कभी-कभी समाज में परिवर्तन ला देता है। जैसा कि यूरोप में हुआ।

परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण धर्म है।

वेबर के अनुसार प्रोटेस्टैण्ट धर्म में कुछ ऐसी आचार संहिता विद्यमान थी जिसके कारण पूजीवाद आया। वो आचार संहिता निम्न है।

1- मेहनत का कोई विकल्प नहीं है। लक्ष्य तक पहॅुचने के लिए सिर्फ मेहनत ही एक साधन है। रात दिन पागलों की तरह मेहनत करिये और साधुओं की तरह जीवन व्यतीत करिये

2- सबकुछ पूर्व निर्धारित है। किस्मत को जानने का कोई तरीका नहीं है।

3- किस्मत को जानने का एक अप्रत्यक्ष तरीका है वह यह कि ईश्वर अपना राजकाज चलने के लिए धरती से कुछ व्यक्तियों को चुनता है। और वहीं चुना जाता है जिसकी किस्मत अच्छी होती है।

4- ईश्वर उसे ही चुनता है जिसे समाज मे सम्मान प्राप्त होता है।

5- सम्मान उसे ही प्राप्त होता है जिसके पास पूजी होती है।

यह आचार संहिता लोंगो के अंदर पैसा कमाने का जुनून पैदा कर देती है। जिस दिन व्यक्ति को समाज मे सम्मान प्राप्त हो जाता था उस दिन पूजी कमाना बंद कर देता था। अतः परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण धर्म है।

1. ईसाई धर्मः इसके अंतर्गत कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेण्ट धर्म का अध्ययन करते हैं। बताते हैं कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म की आचार संहिता ऐसी है कि लोगो के अंदर पूँजी कमाने का जुनून पैदा कर देती हैं जिसके कारण यहाँ पूँजीवाद की स्थापना हुई।

2. हिन्दू धर्मः इस धर्म में पैसा कमाने का जुनून नहीं था। इस धर्म का सारतत्व जाति व्यवस्था है। यहाँ इस प्रकार की विचारधारा या आचार संहिता नहीं पायी जाती थी। यहाँ मोक्ष प्राप्त करना ही मुख्य लक्ष्य है।

3- बौद्ध धर्म - इस धर्म में भी इस प्रकार की कोई आचार संहिता नहीं पायी जाती थी जिससे पूँजी कमाने का जुनून पैदा हो।

4- इस्लाम धर्म - इस धर्म में भी इस प्रकार की कोई आचार संहिता नहीं पायी जाती थी, जिससे पूँजी कमाने का जुनून पैदा हो।

5- यहूदी धर्म - इस धर्म में पूँजी कमाने की प्रवृतिया तो है परन्तु यह एक प्रथा हैं। यहाँ लोग ब्याज के माध्यम से पूंजी कमाते हैं। इसे च्तपीं ब्चपजंसपेउ कहते है। परन्तु यहाँ इस प्रकार की कोई आचार संहिता नहीं पाई जाती थी जिससे पूँजी कमाने का जुनून पैदा हो।

6- कन्फ्यूशियस धर्म - यहाँ वह सभी आचार संहिता पाई जाती थी जो पूंजीवाद को जन्म दे सकती थी जैसी की प्रोटेस्टेण्ट धर्म में पाई जाती थी। किन्तु चीन में पूँजीवाद नहीं आया। वेबर ने सोचा चीन में अवश्य कोई महत्वपूर्ण कारक है जो धर्म के साथ मिलकर पूँजीवाद नहीं आने देता। वेबर ने यूरोप की सामाजिक संरचना का अध्ययन किया और देखा यूरोप में तार्किकता आ चुकी थी। यहाँ मुद्रा और बैंकिग जैसे आर्थिक तत्व पाए जाते थे। जिससे कारण पूँजीवाद आया।

वेबर ने चीन के सामाजिक संरचना का अध्ययन किया तो देखा यहाँ तार्किकता नहीं आई थी न हीं आर्थिक तत्व पाए जाते है यहाँ नौकरशाही परम्परागत नहीं आया।

वेबर के अनुसार ''आर्थिक व्यवस्था और धर्म दोनों ही सामाजिक परिवर्तन का सहायक कारक होते है। '' जहा आर्थिक तत्व और आचार संहिता दोनों होती है वहा पूँजीवाद होता है। अर्थात्

Substance + Spirit = Capitalism

आर्थिक तत्व $ विचारधार त्र सामाजिक परिवर्तन

धर्म का समाजशास्त्रः (Sociology of religion) धर्म का समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की एक शाखा है जिसके अंतर्गत धम्र का अध्ययन किया जाता है। इस शाखा को समाज से परिचित कराने का श्रेय दुर्खीम को जाता है। दुर्खीम ने समाज एवं धर्म के मध्य पाए जाने वाले संबंध का अध्ययन किया और कहा कि समाज ही धर्म का निर्माण करता है और धर्म का कार्य समाज में संगठ न लाना है। दुर्खीम ने अपने इस धर्म संबंधी विचार धारा की पुष्टि के लिए आस्ट्रेलिया की अरूण्टा जनजाति का अध्ययन किया और टोटम को दुनिया के सभी धर्मो का प्रारम्भिंक स्वरूप माना जिसको निर्माण समाज या समूह करता है और यह समाज में संगठन लाता है।

वेबर दुर्खीम से प्रभावित होकर समाजशास्त्र में दुनिया के छः महान धर्मो का अध्ययन करते है और मानते है कि धर्म समाज में परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारक है क्योंकि प्रोटेस्टेण्ट धर्म के उदय के फलस्वरूप ही यूरोपीय समाज में पूँजीवाद आया क्यांकि प्राटेस्टेण्ट धर्म मे ऐसी आचार संहिता थी जिसने पूँजीवाद को जन्म दिया।

आचार संहिता

1- मेहनत का कोई विकल्प नहीं है। लक्ष्य तक पहुॅचने के लिए सिर्फ मेहनत ही एक साधन है। रात दिन पागलों की तरह मेहनत करिये और साधुओं की तरह जीवन व्यतीत करिये

2- सबकुछ पूर्व निर्धारित है। किस्मत को जानने का कोई तरीका नहीं है।

3- किस्मत को जानने का एक अप्रत्यक्ष तरीका है वह यह कि ईश्वर अपना राजकाज चलने के लिए धरती से कुछ व्यक्तियों को चुनता है। और वहीं चुना जाता है जिसकी किस्मत अच्छी होती है।

4- ईश्वर उसे ही चुनता है जिसे समाज मे सम्मान प्राप्त होता है।

5- सम्मान उसे ही प्राप्त होता है जिसके पास पूँजी होती है।

दुनिया के पाच धर्म

1- हिन्दू धर्म, 2- बौद्ध धर्म, 3- इस्लाम धर्म, 4- यहूदी धर्म, 5- कन्फ्यूशियस धर्म

निष्कर्षतः धर्म समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है चाहे संगठन लाने के संदर्भ मे चाहे परिवर्तन लाने के संदर्भ में।

प्रोटेस्टेण्ट धर्म द्वारा पूँजीवाद का विकास (Rise of Capitalism by Protestant ethics)

काल मार्क्स के पूँजीवाद समाज के विकास की बात करते हुए कहा कि पूँजीवाद का विकास उत्पादन के साधन के आधार पर होता है। इस आधार पर इन्होंने ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इसके अंतर्गत इन्होनें समाज के विकास का चैथा चरण पूँजीवाद समाज को माना और कहा कि पूँजीवाद समाज में शोषण और वर्ग संघर्ष चरमसीमा पर पहुच गया और पूँजीवाद समाज को नष्ट हो गया और समाजवाद की स्थापना हुई।

मार्क्स के पूँजीवाद से प्रभावित होकर वेबर भी पूँजीवाद की बात करते हैं। इन्होंने चार प्रकार के पूँजीवाद की बात की।

1- (Booty Capitalism) - चोरी -डकैती से धन कमाकर पूँजीपति बनना

2- (Paritha Capitalism) - ब्याज में पैसा कमाकर पूँजीपति बनना

3- (Traditional Capitalism) - इसका उदय प्रोटेस्टेण्ट धर्म के कारण हुआ। इनका अंतिम लक्ष्य समाज में सम्मान प्राप्त करना। ईश्वर के पास जाने के लिए पूँजी कमाते थे। यहाँ शोषण नहीं पाया जाता।

दुनिया के पाच धर्मो का अध्ययन

1- हिन्दू धर्म, 2- बौद्ध धर्म, 3- इस्लाम धर्म, 4- यहूदी धर्म, 5- कन्फ्यूशियस धर्म

4- (Modern logical Capitalism) - इनका विकास परम्परागत पूँजीवाद से हुआ और परम्परागत पूँजीवाद का उदय प्रोटेस्टेण्ट धर्म से हुआ।

प्रोटेस्टेण्ट धर्म की आचार संहिता

1- मेहनत का कोई विकल्प नहीं है। लक्ष्य तक पहुॅचने के लिए सिर्फ मेहनत ही एक साधन है। रात दिन पागलों की तरह मेहनत करिये और साधुओं की तरह जीवन व्यतीत करिये

2- सबकुछ पूर्व निर्धारित है। किस्मत को जानने का कोई तरीका नहीं है।

3- किस्मत को जानने का एक अप्रत्यक्ष तरीका है वह यह कि ईश्वर अपना राजकाज चलने के लिए धरती से कुछ व्यक्तियों को चुनता है। और वहीं चुना जाता है जिसकी किस्मत अच्छी होती है।

4- ईश्वर उसे ही चुनता है जिसे समाज मे सम्मान प्राप्त होता है।

5- सम्मान उसे ही प्राप्त होता है जिसके पास पूँजी होती है।

माक्र्स पूँजीवाद का मूलकारण आर्थिक व्यवस्था को मानता है और वेबर धर्म एवं आर्थिक व्यवस्था दोनों को पूँजीवाद का कारण मानता है।

12.8 सारांश -

इस अध्याय मे हमने मैक्स वेबर के धर्म का सिद्धांत पढ़ा जिसके अंर्तगत प्रोटेस्टेण्ड नैतिकता और पूंजीवाद की आत्मा के बीच क्या संबंध है बताया। साथ ही यह भी बताया कि किस प्रकार धर्म भी समाज में परिवर्तन लाता है जैसा कि मध्यकालीन एवं आधुनिक यूरोप में हुआ। इस अध्याय में मैक्स वेबर ने कार्ल माक्स के आर्थिक निर्धारण वाद को नकारते हुए कि सिर्फ अर्थ व्यवस्था ही समाज में परिवर्तन लाता है के स्थान पर कहा है कि अर्थव्यवस्था परिवर्तन का एक कारण हो सकता है एक मात्र कारण नहीं क्योकि यूरोप में पूंजीवाद का विकास तथा परिवर्तन धर्म के कारण हुआ।

12.7 शब्दावली

समाजवाद -समाजवाद एक ऐसी विचारधारा है जो उत्पादन के भौतिक साधनों तथा वितरण पर राज्य का अधिकार एवं संचालन पर जोड़ देता है। इस व्यवस्था में लक्ष्यांे की प्राप्ति के लिए तर्क सम्मत सामाजिक नियोजन का प्रयोग किया जाता है ऐतिहासिक दृष्टि से समाजवादी सिद्धांत के कई रूप है जैसे माक्र्सवादी, समाजवाद, फैबियन समाजवाद, गिल्ड समाजवाद, राष्ट्रीय समाजवाद आदि।

लोकतंत्र - लोकतंत्र एक शासन प्रणाली है जिसमें सत्ता का केन्द्रीकरण जनता के हाथों में होता है। शाब्दिक अर्थ मे लोकतंत्र जनता की सत्ता है जिसमें जनता अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से समाज पर शासन -प्रशासन करती है। लोकतंत्र एक ऐसी शासन प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें सरकार जनता की, जनता के द्वारा, तथा जनता के लिए होती है। लोकतंत्र मंे शासन जनता द्वारा सभी व्यस्क् मताधिकारियों की स्वंतत्रता एवं समान सहभागिता पर आधारित है।

आर्थिक निर्धारणवाद - एक ऐसी विचार धारा है जो यह मानता है कि सबसे प्रबल कारक अर्थव्यवस्था है। आर्थिक कारक के अंर्तगत उत्पादन, वितरण, प्रौद्योगिकी, संपत्ति, एवं सामाजिक संबंध है। आर्थिक निर्धारणवाद का प्रतिपादन कार्ल माक्स ने किया। इनके अनुसार सभी सामाजिक घटनाओं का निर्धारण उत्पादन के संबधो द्वारा होता है।

धर्म - धर्म अंग्रेजी शब्द रेलिजन संभवतः लैटिन शब्द लिजोर से बना है जिसका अर्थ है आपस में बांधना। समाजशास्त्रिय परिपेक्षय दृष्टिकोण तथा प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण है।

12.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

समाज शास्त्रीय विचार - मुजतबा हुसैन

मैक्स वेबर समाजशास्त्रीय अध्ययन-एस0एल दोषी पी0सी0 जैन

समाजशास्त्रीय विचारक - डा0 रवीन्द्र नाथ मुकर्जी

12.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. पूंजीवाद के विकास में प्रोटेस्टेण्ट आचार की भूमिका का वर्णन करें।

2. सामाजिक परिवर्तन में धर्म की क्या भूमिका होती है।

इकाई-13 ऐतिहासिक भौतिकवाद
Historical Materialism

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 जीवन परिचय . मार्क्स

13.3 ऐतिहासिक भौतिकवाद का अर्थ व परिभाषा

13.4 विभिन्न युगों में भौतिकवादी व्याख्या सारांश

13.4.1 सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

13.5 सारांश

13.6 शब्दावली

13.7 बोध प्रश्न

13.8 संदर्भ ग्रन्थ

13.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

इस इकाई की विषयवस्तु ऐतिहासिक भौतिकवाद है। ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्स के द्वारा विकसित किया गया एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है, जिसके द्वारा उसने समाज के विकास एवं परिवर्तन की भौतिकवादी एवं समाजशास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की। मार्क्स के पूर्व सामाजिक व्यवस्था की व्याख्या तात्विक या आध्यात्मिक रूप से की जाती थी। परन्तु मार्क्स ने सर्वप्रथम समाज की ऐसी व्याख्या करके उसे एक वैज्ञानिक आयाम दिया। अतः ऐतिहासिक भौतिकवाद के रूप में समाजशास्त्र को मार्क्स ने एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया है।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई में माक्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद सम्बन्धी विचारों पर चर्चा की जायेगी। आप यह भी समझ पायेंगे कि सामाजिक-आर्थिक संरचना में होने वाले परिवर्तन कुछ निश्चित वस्तुनिष्ठ नियमों के अन्तर्गत आते हैं। इसके परिणामस्वरूप एक प्रकार की सामाजिक-आर्थिक संरचना ले लेती है।

13.2 जीवन परिचय . मार्क्स

कार्ल मार्क्स आधुनिक एवं वैज्ञानिक साम्यवाद तथा अधिकांश समाजवादी विचारधाराओं के सर्वमान्य जनक हैं। वैसे तो साम्यवाद की चर्चा अति प्राचीन है और मार्क्स के पहले प्लेटो, सेंट साइमन, फोरियर, लुई, ब्लांक, रा ॅबर्ट आवेन आदि विद्वानों ने भी राष्ट्रीय सम्पत्ति के उचित वितरण तथा विभिन्न वर्गों में सहयोगी सम्बन्ध, पर बल देते हुए समाज की नई व्यवस्था की योजना प्रस्तुत की थी; परन्तु इन समाजवादी विचारकों के विचार मुख्यतः राजनीतिक अथवा धार्मिक आधारों पर आधारित थे। मार्क्स ने ही सर्वप्रथम साम्यवाद को न केवल एक नवीन और मौलिक रूप प्रदान किया बल्कि उसे ऐसे सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया जोकि दिन-प्रतिदिन दृढ़तर ही होता जा रहा है। आज शायद ही कोई ऐसा देश हो जहां इस ‘वाद’ के मानने वाले लोग न हों। समग्र संसार के श्रमिक और क्रान्तिकारी आन्दोलन मार्क्स के प्ररभावशाली विचारों ने प्रभावित हुए हैं। इसीलिए उन्हें ‘अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा के महान् शिक्षक और नेता कहा जाता है। इस दृष्टि से मार्क्स संसार के न केवल महान् अपितु युग-प्रवर्तक विचारकों में से हैं। ई. स्तेपानोवा का तो दावा है कि मार्क्स वाद मानवता को पथ-प्रदर्शक ध्रव-तारे की भांति, कम्यूनिज्म का रास्ता दिखा रहा है।

कार्ल मार्क्स का जन्म 5 मई 1918 को एक यहूदी परिवार में हुआ था। उनका जन्म प्रशिया के राईन प्रान्त के ट्रीचर नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता मध्यवर्गीय वकील थे। उनकी माता हालैंड की एक यहूदी महिला थी। छः वर्ष की अवस्था तक उनका पालन-पोषण यहूदी संस्कारों के अनुरूप हुआ। लेकिन 1824 ई0 में सम्पूर्ण परिवार ने यहूदी धर्म त्यागकर ईसाई धर्म को अपना लिया। यहूदी धर्म के प्रति मार्क्स की धारणा आजीवन विपरीत रही। मार्क्स अपने पिता की नौ संतानों में सबसे बड़े थे। वे बचपन से अपने घर की अपेक्षा अपने पड़ोसी के घर में अधिक आत्मीयता महसूस करते थे। उनकी शिक्षा 1830 से 1835 तक ट्रिचर के एक स्कूल में सम्पूर्ण हुई। उन्होंने अपने स्कूल की अन्तिम परीक्षा के लिए जो निबन्ध चुना था उसका विषय था- पेशा चुनने के सम्बन्ध में एक तरूण के विचार’। उनके इस निबन्ध के चयन से ही पता चलता है कि उन्होंने मानवता की त्यागपूर्ण सेवा करने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझी थी। मार्क्स को अपने पड़ोसी की पुत्री जेनी वान वेस्ट फैलन से गहरा लगाव था जो धीरे-धीरे प्रेम में परिणत हो गया। लेकिन मार्क्स एवं जेनी का कौमार्य प्रेम आसानी से विवाह सम्बन्ध में परिणत

नहीं हो सकता। इसका एक कारण यह था कि जहां जेनी अद्वितीय सुन्दरी थी वहीं मार्क्स सूरज की रोशनी में भी महा बदसूरत दिखते थे। अर्थात् दोनों सुन्दरता में एक दूसरे के विपरीत थे। इसके अलावा मार्क्स साधारण परिवार से आते थे एवं जेनी कुलीन परिवार की थी। लेकिन इन सबके बावजूद जेनी ने मार्क्स से विवाह करना पसन्द किया। विवाह के लिए उसे लम्बी अवधि तक प्रतिक्षा करनी पड़ी जब तक मार्क्स की शिक्षा पूरी नहीं हो गयी। 1835 में मार्क्स को उच्च शिक्षा के लिए वा ॅन विश्वविद्यालय में भेजा गया। माता पिता की इच्छा थी कि उनका पुत्र एक अच्छा वकील बने। इसलिए विधिशास्त्र की पढ़ाई से उनकी उच्च शिक्षा प्रारम्भ हुई। लेकिन मार्क्स का ध्यान विधिशास्त्र की अपेक्षा इतिहास एवं दर्शन की ओर अधिक था। इसलिए 1838 में अपने पिता के देहान्त के बाद उन्होने अपनी सारी प्रतिभा को पूर्णतया इतिहास एवं दर्शन की ओर लगा दिया। मार्क्स की विचारधाराओं पर उस समय की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का स्पष्ट प्रभाव था। पूंजीवाद का विकास हो जाने के कारण यूरोप के कई देशों में सामन्तों एवं दासों के बीच असहय एवं दुःखदायक सम्बन्ध विकसित हो चुके थे। किसानों एवं दस्तकारों के सम्बन्ध भी बिगड़ चुके थे। एक सर्वहारा वर्ग पैदा हो चुका था। यह वर्ग उत्पादन के सभी साधनों से वंचित था। समाज दो पाटों के बीच घिस रहा था। इन सबका प्रभाव मार्क्स वाद की विचारधाराओं पर गहरे रूप में पड़ा।

मार्क्स की कृतियां

कार्ल मार्क्स ने अनेक कृतियों की रचना की। ये कृतियां निम्नलिखित हैं-

1- Economic and Political Manuscript, 1843

2- The Holy Family, 1845

3- The German Ideology, Thesis on Fairbakh, 1846

4- The Poverty of Philosohpy, 1847

5- Communist Manifesto, 1848

6- The class struggle in France, 1850.

7- The Eighteenth Brumayar of Louis Bonapart, 1852

8- A Contribution to the Critic of Political Economy, 1859

9- Das Capital (First Part) 1857

7- The Civil War in France,

7- The Critic of Goa Programme, 1875

7- Das Capital (2nd Part, Pub. by Angels) 1855

13- Das Capital (3rd Part, Pub. by Angels) 1894.

उपर्युक्त पुस्तकों की सूची से पता चलता है कि मार्क्स आजीवन लेखन के प्रति समर्पित रहे। उन्होंने अनेक पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। संभवतः इसीलिए इरविंग एम0 जेटलिंग ने 'Ideology and the Development of Sociological Theory' में लिखा है, 'वस्तुतः मार्क्स इस शताब्दी में जितने प्रभावशाली सिद्ध हुए उतना अन्य कोई विचारक न हो सका।'

13.3 ऐतिहासिक भौतिकवाद

ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्स के विचारों की धूरी है। यह सिद्धान्त इतिहास, संस्कृति और सामाजिक परिवर्तन की सभी आदर्शवादी व्याख्याओं को नकारता है। मानवशास्त्रीय दर्शन पर आधारित यह सिद्धान्त इतिहास की व्याख्या मानव द्वारा सामाजिक विश्व के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिये किये गये आर्थिक प्रयत्नों और मूलभूत आर्थिक विभिन्नताओं के कारण उत्पन्न वर्ग संघर्ष के रूप में करता है।

कार्ल मार्क्स द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों में ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त एक प्रमुख सिद्धान्त है। इससे सम्पूर्ण विश्व के इतिहास में एक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। यह मानव इतिहास की गतिविधि को नियन्त्रित करता है। इस सिद्धान्त के द्वारा मार्क्स ने हीगल द्वारा प्रस्तुत इतिहास की आदर्शात्मक व्याख्या के स्थाप पर अपनी भौतिवादी व्याख्या की प्रतिष्ठा की है। ऐतिहासिक भौतिकवाद की बुनियादी बातों को मार्क्स ने अपनी कृति जर्मन विचारधारा में प्रस्तुत की है। मार्क्स को यह मूलभूत ऐतिहासिक नियम भौतिक मूल्यों के उत्पादन में समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों से प्राप्त हुआ था। मार्क्स ने अपने इस सिद्धान्त में बताया है कि सामाजिक-आर्थिक संरचना में होने वाले परिवर्तन कुछ निश्चित वस्तुनिष्ठ नियमों के अन्तर्गत आते हैं। इसके परिणामस्वरूप एक प्रकार की सामाजिक-आर्थिक संरचना ले लेती है। ऐतिहासिक भौतिकवाद इतिहास की उस दिशा की खोज करता है जो सभी निर्णायक ऐतिहासिक घटनाओं को चलाने वाली महत्वपूर्ण शक्ति है। मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद के सम्बन्ध में एंगेल्स ने लिखा है कि मार्क्स पहले ऐसे विचारक थे जिन्होंने ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा को समाजविज्ञानों में रखा। ऐतिहासिक भौतिक के अतिरिक्त मार्क्स का दूसरा बड़ा योगदान अतिरिक्त मूल्य का है। मार्क्स ने अपने ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्त को दार्शनिक विवेचना के आधार पर निरूपित किया है। मार्क्स ने पूंजीवाद की नृशंस कार्यवाही को नजदीक से देखा था। इसलिए उन्होंने लिखा कि दार्शनिकों ने विभिन्न विधियों से विश्व की केवल व्याख्या की है, लेकिन प्रश्न विश्व को बदलने का है। मार्क्स एवं हीगल के दर्शन के सम्बन्ध में सेबाइन ने राजनैतिक दर्शन का इतिहास में लिखा है, 'दोनों व्यक्ति इतिहास के प्रवाह को तर्कसंगत ढंग से आवश्यक मानते थे। उनका विचार था कि यह प्रवाह एक सुनिश्चित योजना के अनुसार संचालित होता है और एक सुनिश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ता है।

मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद के सारतत्व निम्नलिखित कहे जा सकते हैं-

(1) जीवन एवं जीवित रहने के लिए आवश्यक भौतिक वस्तुओं या मूल्यों के उत्पादन एवं पुनः उत्पादन पर ऐतिहासिक विकास निर्भर करता है।

(2) मानव अस्तित्व के लिए सर्वप्रथम उसका जिन्दा रहना आवश्यक है। इसके लिए भोजन, वस्त्र एवं आवास सर्वप्रथम आवश्यकता है।

(3) मनुष्य को पहले भोजन, वस्त्र एवं आवास चाहिए। इसके बाद ही वह धर्म कला, आदर्श एवं राजनीति के सम्बन्ध में सोचता है। इस सम्बन्ध में मार्क्स एवं एंगेल्स ने 'The German Ideology' में लिखा है, 'सर्वप्रथम ऐतिहासिक कार्य उन साधनों का उत्पादन है जिससे कि भोजन, वस्त्र और आवास आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके, अर्थात् स्वयं भौतिक जीवन का उत्पादन ही सर्वप्रथम ऐतिहासिक कार्य है। वास्तव में, यही एक ऐसा ऐतिहासिक कार्य है जो कि हजारों वर्ष पहले की भांति आज भी मानव जीवन को बनाये रखने के लिए परम आवश्यक है अर्थात् समस्त इतिहास की एक बुनियादी शर्त है।'

(4) उत्पादन प्रणाली ही समाज के संगठन और उसकी विभिन्न संस्थाओं अर्थात् ऐतिहासिक घटनाओं को निर्धारित करती है।

(5) इतिहास में सभी प्रमुख परिवर्तन उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन के कारण ही हुए हैं।

(6) इतिहास का विकास विचार, आत्मा या आदर्श पर आधारित नहीं होता है बल्कि उसका वास्तविक आधार समाज का आर्थिक जीवन, उत्पादन शक्ति एवं उत्पादन सम्बन्ध है।

(7) भौतिक मूल्यों के उत्पादन क्रिया में सबसे आधारभूत, सबसे अधिक आवश्यक एवं सबसे अधिक सामान्य ऐतिहासिक घटना है। इतिहास का निर्माण असंख्य साधारण व्यक्तियों के द्वारा होता है।

13.4 विभिन्न युगों में भौतिकवादी व्याख्या (Materialist Interpretation of Different Ages)

मार्क्स के अनुसार उत्पादन प्रणाली के प्रत्येक परिवर्तन के साथ लोगों के आर्थिक सम्बन्ध एवं सामाजिक व्यवस्था आदि में भी परिवर्तन हो जाता है। उन्होंने इस दृष्टिकोण से मानव इतिहास को पांच युगों में विभाजित किया है। ये पांच युग हैं- आदिम साम्यवादी युग, दासत्व युग, सामन्तवादी युग, पूंजीवादी युग तथा समाजवादी युग। मार्क्स का कथन है कि इनमें से तीन युग समाप्त हो चुके हैं, चैथा युग चल रहा है एवं पांचवा अभी शेष है। ये पांच युग हैं- 1. आदिम साम्यवादी युग 2. दासत्व युग 3. सामन्तवादी युग 4. पूंजीवादी युग और 5. समाजवादी युग।

1. आदिम साम्यवादी युगः यह युग इतिहास का प्रारम्भिक युग है। इस युग में उत्पादन के साधन किसी व्यक्ति-विशेष के नहीं, बल्कि पूरे समुदाय के होते थे। उत्पादन और वितरण साम्यवादी ढंग से होता था। पहले-पहल पत्थर

के औजार और बाद में तीर-धनुष से लोग फल-मूल इकट्ठा करते तथा पशुओं का शिकार करते थे। जंगलों से फल इकट्ठा करने, पशुओं का शिकार करने, मछली मारने, रहने के लिए किसी न किसी प्रकार का 'घर' बनाने और ऐसे ही अन्य कार्यों में सब लोग मिल-जुलकर काम करने को बाध्य होते थे, क्योंकि परिस्थितियां ही कुछ इस प्रकार की थीं कि ये सब काम अकेले नहीं किये जा सकते थे। संयुक्त श्रम के कारण ही उत्पादन के साधनों पर तथा उनसे मिलने वाली वस्तुओं पर सबका अधिकार होता था। उस समय उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार की धारणा का अभाव था। इसलिए वर्ग-प्रथा न थी, और न ही किसी प्रकार का शोषण।

2. इसके बाद दासत्व युग का आविर्भाव हुआ। दास-व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर दास के मालिकों का अधिकार होता था, साथ ही साथ उत्पादन कार्य को करने वाले श्रमिकों अर्थात् दासों पर भी उनका अधिकार होता था। इन दासों को उनके मालिक पशुओं की भांति बेच सकते थे, खरीद सकते थे या मार सकते थे। इस युग से खेती और पशुपालन का आविष्कार हुआ और धातुओं के औजारों को उपयोग में लाया गया। इस युग में निजी सम्पत्ति की धारणा विकसित हुई, सम्पत्ति कुछ लोगों के हाथों में अधिकाधिक एकत्र होने लगी तथा सम्पत्ति के अधिकारी इस अल्पसंख्यक ने बहुसंख्यक को दास बनाकर रखा। पहले की भांति अब लोग स्वेच्छा से मिल-जुलकर काम नहीं करते थे, बल्कि उन्हें दास बनाकर उन्हें जबरदस्ती काम लिया जाता था। इस प्रकार समाज दो वर्गों- दास तथा अनेक मालिक में बंट गया। इस शोषक तथा शोषित वर्गों में संघर्ष भी स्वाभाविक था।

3. तीसरा युग सामन्तवादी युग था। इस युग में उत्पादन के साधनों पर सामन्तों का आविष्कार होता था। ये सामन्त उत्पादन के साधनों, विशेषतः भूमि के स्वामी होते थे। गरीब अर्द्ध-दास किसान इन सामन्तों के अधीन थे। उत्पादन का कार्य इन्हीं भमिहीन किसानों से करवाया जाता था। किसान दास न थे, पर उन पर अनेक प्रकार के बन्धन थे। इन्हें सामन्तों की भूमि की भी जुताई-बुआई आदि बेगार के रूप में करनी पड़ती थी और युद्ध के समय उनको सेना में सिपाहियों के रूप में काम करना पड़ता था। इन सबसे बदले में उन्हें अपने सामन्तों से अपने निर्वाह के लिए भूमि मिलती थी। निजी सम्पत्ति की धारणा इस युग में और भी प्रबल हुई और सामन्तों द्वारा किसानों का शोषण भी प्रायः दासत्व युग की भांति होता था। इन दोनों में संघर्ष और भी स्पष्ट था।

4.चैथा युग आधुनिक पूंजीवादी युग है। इस युग का प्रादुर्भाव मशीनों के आविष्कार तथा बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों के जम्न के फलस्वरूप हुआ इस युग में उत्पादन के साधनों पर पूंजीपतियों का अधिकार होता है। उत्पादन कार्य करने वाला दूसरा वर्ग-वेतनभोगी श्रमिक-व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्र होते हैं; इस कारण दासों की भांति उन्हें पूंजीपति लोग बेच या मार नहीं सकते हैं, परन्तु चूंकि उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों का कुछ भी अधिकार नहीं होता, इस कारण अपने तथा अपने परिवार के अन्य सदस्यों की भूखों मरने से बचाने के लिए उन्हें अपने श्रम को पूंजीपतियों के हाथ बेचना पड़ता है जोकि उन्हें नाम-मात्र का वेतन देते हैं। पूंजीपतियों के इस प्रकार के उत्तरोत्तर बढ़ने वाले शोषण के फलस्वरूप श्रमिकों की दशा दिन-प्रतिदिन अधिक दयनीय होती जायेगी और अन्त में श्रमिक वर्ग बाध्य होकर क्रान्ति के द्वारा पूंजीपतियों को उखाड़ फेकेगा। इस प्रकार सर्वहारा के अधिनायकत्व की स्थापना होगी और समाजवादी या साम्यवादी युग के आगमन का पथ प्रशस्त होगा।

5. पांचवां और आधुनिकतम युग होगा समाजवादी या साम्यवादी युग। यह युग सर्वरूप में वर्ग-विहीन, राज्य-विहीन और शोषण रहित होगा। जैसाकि पहले भी कहा गया है, यह तभी संभव होगा जबकि पूंजीवादी व्यवस्था को खूनी क्रान्ति के द्वारा श्रमिक वर्ग उखाड़ फेकेगा और शासकीय शक्ति पर अपना अधिकार जमा लेगा। परन्तु श्रमिक वर्ग के हाथ में शक्ति आ जाने से ही समाजवाद की स्थापना या समाजवादी व्यवस्था संभव न होगी क्योंकि पूंजीवादी वर्ग का सम्पूर्ण विनाश उस स्तर पर भी न होगा और उस स्तर के बचे-खुचे लोग रह ही जायेंगे जो उस नवीन समाजवादी व्यवस्था को उलट देने का प्रयत्न करेंगे। इन लोगों का विनाश धीरे-धीरे ही होगा और इसके लिए आवश्यक तैयारी की आवश्यकता होगी। नये सिरे से समस्त समाज का पुनर्निमाण करना होगा। यही संक्रमणकालीन युग होगा। इस युग में राज्य का प्रमुख कार्य निम्नलिखित होगा-भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व, व्यापार तथा वाणिज्य का नियमन, सम्पत्ति के उत्तराधिकार को उन्मूलन, कारखानों में बाल-श्रम का निषेध और प्रत्येक प्रकार के एकाधिकारों या विशेषाधिकारों का अन्त करना।

13.4.1 सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

मार्क्स से पूर्व समाज के विकास की व्याख्या हीगल के आदर्शवादी दर्शन के आधार पर की जाती थी। हीगलवादी दर्शन के अनुसार समाज में सर्वप्रथम वाद आता है और समाज को कुछ वादों के साथ संचालित करता है। परन्तु कोई भी वाद अपने आप में पूर्ण नहीं होता है। वह समाज के विकास को पूर्ण रूप सही दिशा नहीं दे पाता जिसके कारण समाज में उसके खिलाफ कुछ प्रतिवाद भी उत्पन्न होते हैं और यह प्रतिवाद जब समाज में बड़े पैमाने पर प्रसारित हो जाता है तो उसका वाद के साथ संघर्ष होता है जिसके कारण वाद को प्रतिवाद के साथ कुछ समझौते करने पड़ते हैं जिससे एक नई स्थिति उत्पन्न होती है, उसे संवाद कहते हैं और कालान्तर में यह समाज के लिए वाद हो जाता है। परन्तु कुछ समय बाद इसकी भी कमियां स्पष्ट होने लगती हैं और प्रतिवाद उत्पन्न होता है। इस प्रकार सामाजिक विकास की गति चलती रहती है। यही हीगल का द्वन्द्वात्मक आदर्शवाद है।

मार्क्स ने देखा कि समाज में द्वन्द्वात्मक विकास तो है परन्तु उसका आधार वैचारिक न होकर भौतिकवादी है और उसने कहा कि एक उत्पादन प्रणाली आती है और जब वह समाज की पूर्वापेक्षी आशाओं पर खरी नहीं उतरती है तो उसकी जगह दूसरी उत्पादन प्रणाली जन्म लेती है और एक नये समाज का निर्माण होता है और इस तरह समाज का विकास होता रहता है और समाज के विकास एवं परिवर्तन की यह धारा तब तक चलती रहेगी जब तक समाज मे साम्यवादी व्यवस्था स्थापित न हो जाये।

- **ऐतिहासिक भौतिकवाद की मूल मान्यतायें**

हीगलवादी दर्शन की यह मान्यता थी कि समाज अपने आप में संतुलन की अवस्था में होता है। परन्तु मार्क्स ने कहा कि समाज में हमेशा संतुलन ही नहीं होता। उसमें असंतुलन, असमानता तथा भेद भी व्याप्त होता है जिसके कारण वर्ग संघर्ष होता रहता है।ऐतिहासिक भौतिकवाद समाज की असमानता के अध्ययन का एक विशेष विज्ञान है जिसके द्वारा आर्थिक असमानता के साथ-साथ हम अधिसंरचनात्मक असमानता का भी अध्ययन कर सकते हैं।

13.5 सारांश

ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक तथ्यों की भौतिकवादी व्याख्या है। इसके अनुसार इतिहास की व्याख्या में विचारों का स्थान नहीं है। अपितु हमें समझना चाहिए कि सामाजिक संस्था और उनसे सम्बन्धित मूल्य उत्पादन के तरीकों से निर्धारित होते हैं/फिर भी मार्क्स के संदर्भ में निर्धारित शब्द का तात्पर्य निर्धारणवाद से नहीं लिया जाना चाहिए।

13.6 शब्दावली

वर्ग- समान आर्थिक स्थिति एवं समान हित चाहने वाले लोगों का एक समूह।

अधोसंरचना- उत्पादन प्रणाली, जिसमें उत्पादन सम्बन्ध एवं उत्पादन के साधन शामिल हैं।

अधिसंरचना- इसके अन्तर्गत राज्य, विद्यालय, धार्मिक संस्थायें, संस्कृति, विचार, मूल्य तथा दर्शन आते हैं।

13.67 बोध प्रश्न

1. मार्क्स ने जिस दार्शनिक से प्रेरणा पायी उसका नाम है-

(अ) काम्ट (ब) स्पेन्सर

(स) हीगल (द) अरस्तु

2. निम्न में से कौन से कथन ऐतिहासिक भौतिकवाद के लिए स्वीकार्य नहीं हैं-

(अ) सभी प्राणीयों में मानव प्राणीशास्त्रीय रूप से सर्वाधिक निर्धारित जीव हैं।

(ब) मानव प्रकृति मूलतः दुष्ट है।

(स) वर्ग समाज में व्यक्ति प्रसन्न रहता है।

3. ऐतिहासिक भौतिकवाद एक समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य है/समीक्षा कीजिए?

4. मार्क्स और हीगल के सामाजिक दृष्टि में अन्तर कीजिए।

13.8 संदर्भ ग्रन्थ

बाटोमोर, टाम, 1995. मार्क्स वादी समाजशास्त्र, अनुवादकः सदाशिव द्विवेदी, मैकमिलन कम्पनी, नई दिल्ली

अग्रवाल, जी0के0 1993. प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक, एस.बी.पी.डी., आगरा

Mukherjee, R.N. 1961. Social Thought, Vivek Prakashan, Delhi.

Harikrishan Rawat, Advanced Encyclopedia of Sociology, Rawat publication, Delhi.

13.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

अग्रवाल, जी0के0, प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक- साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स (प्रा0) लिमिटेड।

पाण्डेय,गणेश,पाण्डेय अरूणा-सामाजिक विचारधारा एवं सामाजिक विचारक, राधा पब्लिकेशन,दिल्ली।

मुकर्जी, राधाकमल, सामाजिक विचारधारा, विवके प्रकाशन, दिल्ली।

13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद की विस्तृत व्याख्या कीजिये।

2.मार्क्स द्वारा प्रतिपादित विभिन्न युगों की भौतिकवादी व्याख्या की चर्चा कीजिए।

इकाई-14 वर्ग संघर्ष

Class Struggle

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 वर्ग संघर्ष का अर्थ एवं परिभाषा

14.3 वर्ग संघर्ष की प्रक्रिया

सर्वहारा वर्ग का विकास

सम्पत्ति का बढ़ता हुआ महत्व

आर्थिक शक्ति से राजनीतिक शक्ति का उदय

वर्गों का ध्रुवीकरण

दरिद्रीकरण में वृद्धि

अलगाव

वर्ग एकता तथा क्रान्ति

सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद

14.4 अभ्यासार्थ प्रश्न के उत्तर

14.5 संदर्भ ग्रन्थ

14.6 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

14.0 प्रस्तावना

सामाजिक परिवर्तन के लिये वर्ग संघर्ष की प्रक्रिया सर्वाधिक महत्पूर्ण है। मार्क्स का मानना है। संसार में समय-समय पर जो क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन हुये हैं उनके लिए वर्ग संघर्ष ही उत्तरदायी रहा है। असमानता हर समय समाज में विद्यमान होती है। यह किसी भी समाज की सच्चाई होती है, जिसके कारण समाज में संघर्ष होते रहते हैं।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप मार्क्स के वर्ग संघर्षए वर्ग संघर्ष की प्रक्रिया को भलीभांति समज सखेंगे

14.2 वर्ग संघर्ष का अर्थ एवं परिभाषा

मार्क्स वादी विचार के अनुसार मनुष्य साधारणतया एक सामाजिक प्राणी है, परन्तु अधिक स्पष्ट और आर्थिक रूप में वह एक 'वर्ग-प्राणी' है। मार्क्स का कहना है कि किसी भी युग में, जीविका उपार्जन की प्राप्ति के विभिन्न साधनों के कारण पृथक-पृथक वर्गों में विभाजित हो जाते हैं और प्रत्येक वर्ग में एक विशेष वर्ग-चेतना उत्पन्न हो जाती है। दूसरे शब्दों में, वर्ग का जन्म उत्पादन के नवीन तरीकों के आधार पर होता है। जैसे ही भौतिक उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन होता है वैसे ही नये वर्ग का उद्भव भी होता है। इस प्रकार एक समय की उत्पादन प्रणाली ही उस समय के वर्गों की प्रकृति को निश्चित करती है।

आदिम समुदायों में कोई भी वर्ग नहीं होता था और मनुष्य प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयोग करते थे। जीवित रहने के लिए आवश्यक वस्तुओं का वितरण बहुत कुछ समान था क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तुओं से कर लेता था। दूसरे शब्दों में, प्रकृति द्वारा जीवित रहने के साधनों का वितरण समान होने के कारण वर्ग का जन्म उस समय नहीं हुआ था पर शीघ्र ही वितरण में भेद या अन्तर आने लगा और उसी के साथ-साथ समाज वर्गों में विभाजित हो गया। मार्क्स के अनुसार समाज स्वयं अपने को वर्गों में विभाजित हो गया। मार्क्स के अनुसार समाज स्वयं अपने को वर्गों में विभाजित कर लेता है- यह विभाजन धनी और निर्धन, शोषक और शोषित तथा शासक और शासित वर्गों में होता है।

आधुनिक समाज में आय के साधन के आधार पर तीन महान् वर्गों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें प्रथम वे हैं जो श्रम शक्ति के अधिकारी हैं, दूसरे वे हैं जो पूंजी के अधिकारी हैं और तीसरे वे जो मजींदार हैं। इन तीन वर्गों की आय के साधन क्रमशः मजदूरी, लाभ और लगान हैं। मजदूरी कमाने वाले मजदूर, पूंजीपति और जमींदान उत्पादन के पूंजीवादी तरीके पर आधारित आधुनिक समाज के तीन महान् वर्ग हैं।

1 आधुनिक युग में, मार्क्स के अनुसार, इन तीनों वर्गों का जन्म बड़े पैमाने पर पूंजीवादी उद्योग-धन्धे के पनपने के फलस्वरूप हुआ है। पूंजीवादी क्रान्ति का यही प्रत्यक्ष प्रभाव और सर्वप्रमुख परिणाम है। एक राष्ट्र में औद्योगीकरण तथा श्रम विभाजन के फलस्वरूप सर्वप्रथम औद्योगिक तथा व्यावसायिक श्रम कृषि श्रम से और गांव शहर से पृथक हो जाता है। इसके फलस्वरूप अलग-अलग स्वार्थ समूहों का भी जन्म होता है। श्रम विभाजन और भी अधिक विस्तृत रूप से लागू होने पर व्यावसायिक श्रम भी औद्योगिक श्रम से पृथक हो जाता है। साथ ही श्रम विभाजन के आधार पर ही उपर्युक्त विभिन्न वर्गों में निश्चित प्रकार के श्रम में सहयोग करने वाले व्यक्तियों में भी विभिन्न प्रकारर के विभाजन हो जाते हैं। इन विभिन्न समूहों की सापेक्षिक स्थिति, कृषि, उद्योग तथा वाणिज्य का वर्तमान स्तर व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों को भी निश्चित करता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वे व्यक्ति, जो उत्पादन कायर्स में क्रियाशील हैं, कुछ निश्चित सामाजिक तथा राजनीतिक सम्बन्ध को स्थापित करते हैं। इस प्रकार वर्गों का जन्म जीविका-उर्पाजन के आर्थिक साधन के अनुसार होता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि विभिन्न प्रकार के उत्पादन कार्यों में लगे हुये व्यक्ति समूहों में बंट जाते हैं। पर इन सबकी एकमात्र पूंजी श्रम ही होती है और अपने श्रम को बेचकर ही वे अपना पेट पालते हैं; इस कारण उनको मेहनतकश या श्रमिक-वर्ग कहा जाता है। इसके विपरीत समाज में एक और वर्ग होता है जोकि पूंजी का अधिकारी होता है और वह उसी से अन्य लोगों के श्रम को खरीदना है। यही पूंजीपति वर्ग है।

2 अतः मार्क्स का मत है कि मूल रूप से आर्थिक उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर समाज के दो वर्ग प्रमुख होते हैं। उदाहरणार्थ, दासत्व युग में दो वर्ग दास और उनके स्वामी थे, सामन्तवादी युग में दो प्रमुख वर्गों की सर्वप्रमुख विशेषता यह होती है कि इनमें से एक वर्ग के हाथों में आर्थिक उत्पादन के समस्त साधन केन्द्रीकृत होते हैं जिनके बल पर यह वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करता रहता है जबकि वास्तव में यह दूसरा वर्ग है। आर्थिक वस्तुओं या मूल्यों का उत्पादन करता है। इससे इस शोषित वर्ग में असंतोष घर कर जाता है और वह वर्ग-संघर्ष के रूप में प्रकट होता है।

14.3 वर्ग संघर्ष की प्रक्रिया

- **वर्ग और वर्ग संघर्ष (Class and Class Struggle)**

मार्क्स वादी विचार के अनुसार मनुष्य साधारणतया एक सामाजिक प्राणी है, परन्तु अधिक स्पष्ट और आर्थिक रूप में वह एक 'वर्ग-प्राणी' है। मार्क्स का कहना है कि किसी भी युग में, जीविका उपार्जन की प्राप्ति के विभिन्न साधनों के कारण पृथक-पृथक वर्गों में विभाजित हो जाते हैं और प्रत्येक वर्ग के एक विशेष वर्ग-चेतना उत्पन्न हो जाती है। दूसरे शब्दों में, वर्ग का जन्म उत्पादन के नवीन तरीकों के आधार पर होता है। जैसे ही भौतिक उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन होता है वैसे ही नये वर्ग का उद्भव भी होता है। इस प्रकार एक समय की उत्पादन प्रणाली ही उस समय के वर्गों की प्रकृति को निश्चित करती है।

- **वर्ग निर्माण के आधार (Basis of Class Formation)**

आदिम समुदायों में कोई भी वर्ग नहीं होता था और मनुष्य प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयोग करते थे। जीवित रहने के लिए आवश्यक वस्तुओं का वितरण बहुत कुछ समान था क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तुओं से कर लेता था। दूसरे शब्दों में, प्रकृति द्वारा जीवित रहने के साधनों का वितरण समान होने के कारण वर्ग का जन्म उस समय नहीं हुआ था पर शीघ्र ही वितरण में भेद या अन्तर आने लगा और उसी के साथ-साथ समाज वर्गों में विभाजित हो गया। मार्क्स के अनुसार समाज स्वयं अपने को वर्गों में विभाजित हो गया। मार्क्स के अनुसार समाज स्वयं अपने को वर्गों में विभाजित कर लेता है- यह विभाजन धनी और निर्धन, शोषक और शोषित तथा शासक और शासित वर्गों में होता है।

- आधुनिक समाज में आय के साधन के आधार पर तीन महान् वर्गों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें प्रथम वे हैं जो श्रम शक्ति के अधिकारी हैं, दूसरे वे हैं जो पूंजी के अधिकारी हैं और तीसरे वे जो मजींदार हैं। इन तीन वर्गों की आय के साधन क्रमशः मजदूरी, लाभ और लगान हैं। मजदूरी कमाने वाले मजदूर, पूंजीपति और जमींदान उत्पादन के पूंजीवादी तरीके पर आधारित आधुनिक समाज के तीन महान् वर्ग हैं।
- आधुनिक युग में, मार्क्स के अनुसार, इन तीनों वर्गों का जन्म बड़े पैमाने पर पूंजीवादी उद्योग-धन्धे के पनपने के फलस्वरूप हुआ है। पूंजीवादी क्रान्ति का यही प्रत्यक्ष प्रभाव और सर्वप्रमुख परिणाम है। एक राष्ट्र में औद्योगीकरण तथा श्रम विभाजन के फलस्वरूप सर्वप्रथम औद्योगिक तथा व्यावसायिक श्रम कृषि श्रम से और गांव शहर से पृथक हो जाता है। इसके फलस्वरूप अलग-अलग स्वार्थ समूहों का भी जन्म होता है। श्रम विभाजन और भी अधिक विस्तृत रूप से लागू होने पर व्यावसायिक श्रम भी औद्योगिक श्रम से पृथक हो जाता है। साथ ही श्रम विभाजन के आधार पर ही उपर्युक्त विभिन्न वर्गों में निश्चित प्रकार के श्रम में सहयोग करने वाले व्यक्तियों में भी विभिन्न प्रकारर के विभाजन हो जाते हैं। इन विभिन्न समूहों की सापेक्षिक स्थिति, कृषि, उद्योग तथा वाणिज्य का वर्तमान स्तर व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों को भी निश्चित करता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वे व्यक्ति, जो उत्पादन कायर्स में क्रियाशील हैं, कुछ निश्चित सामाजिक तथा राजनीतिक सम्बन्ध को स्थापित करते हैं। इस प्रकार वर्गों का जन्म जीविका-उर्पाजन के आर्थिक साधन के अनुसार होता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि विभिन्न प्रकार के उत्पादन कार्यों में लगे हुये व्यक्ति समूहों में बंट जाते हैं। पर इन सबकी एकमात्र पूंजी श्रम ही होती है और अपने श्रम को बेचकर ही वे अपना पेट पालते हैं; इस कारण उनको मेहनतकश या श्रमिक-वर्ग कहा जाता है। इसके विपरीत समाज में एक और वर्ग होता है जोकि पूंजी का अधिकारी होता है और वह उसी से अन्य लोगों के श्रम को खरीदना है। यही पूंजीपति वर्ग है।

अतः मार्क्स का मत है कि मूल रूप से आर्थिक उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर समाज के दो वर्ग प्रमुख होते हैं। उदाहरणार्थ, दासत्व युग में दो वर्ग दास और उनके स्वामी थे, सामन्तवादी युग में दो प्रमुख वर्गों की सर्वप्रमुख विशेषता यह होती है कि इनमें से एक वर्ग के हाथों में आर्थिक उत्पादन के समस्त साधन केन्द्रीकृत होते हैं जिनके बल पर यह वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करता रहता है जबकि वास्तव में यह दूसरा वर्ग है। आर्थिक वस्तुओं या मूल्यों का उत्पादन करता है। इससे इस शोषित वर्ग में असंतोष घर कर जाता है और वह वर्ग-संघर्ष के रूप में प्रकट होता है।

समाज में वर्ग संघर्ष की प्रक्रिया निरन्तर रूप से चलती रहती है, इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए मार्क्स ने कहा कि 'दुनिया के आज तक के समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।' यह स्वतन्त्र व्यक्ति और दास, भूस्वामी एवं अर्द्ध दास, उच्च तथा सामान्य वर्ग, उद्योगपति एवं श्रमिक के बीच चलने वाला संघर्ष का इतिहास है। इस संदर्भ में वर्ग संघर्ष की सम्पूर्ण प्रक्रिया का विश्लेषण आवश्यक है।

सर्वहारा वर्ग का विकासः

सर्वहारा वर्ग का विकास संघर्ष की प्रक्रिया की आरम्भिक अवस्था है, इस अवस्था में शोषित लोग धीरे-धीरे एक दूसरे से सम्बद्ध; होने लगते हैं। आरम्भ में व्यक्तिगत हितों के कारण श्रमिक एक दूसरे से अलग ही रहते हैं। किन्तु मजदूरी की सामान्य समस्याओं को लेकर उनके हित सामान्यतः बनने लगते हैं। सर्वहारा वर्ग के विकास के समय श्रमिक व्यक्तिगत प्रतिस्पद्र्धा को भूलकर अपनी समस्याओं पर विचार करने लगते हैं।

सम्पत्ति का बढ़ता हुआ महत्व

किसी भी समाज के लोगों की सम्पत्ति या धन के सम्बन्ध में क्या मनोवृत्ति है। इसी आधार पर ही लोगों के सामाजिक व्यवहार निर्धारित होते हैं। मार्क्स के अनुसार जिस वर्ग में सम्पत्ति स्वामित्व की लालसा होती है। वह पूंजीपति बन जाता है और अन्य लोग सर्वहारा वर्ग में शामिल हो जाते हैं।

- **आर्थिक शक्ति से राजनीतिक शक्ति का उदय-**

उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व होने के कारण पूंजीपतिवर्ग को राजनैतिक शक्ति बढ़ने लगती है तथा वह इसका उपयोग सामान्य जनता के शोषण के लिए करने लगते हैं।

- **वर्गों का धुर्वीकरण-**

पूंजीपति वर्ग शीघ्र ही आर्थिक और राजनैतिक रूप से सशक्त होकर श्रमिकों एवं समाज के अन्य लोगों के शोषण में लीन हो जाता है और जो श्रमिक अपनी निम्न आर्थिक स्थिति के कारण अपनी आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर पाते वे भी धीरे-धीरे इससे जागरूक होकर संगठित होने लगते हैं।

- **दरिद्रीकरण में वृद्धि**

मार्क्स का विचार है कि पूंजीपति वर्ग द्वारा श्रमिकों के आर्थिक शोषण के कारण उनकी आर्थिक दशा निरन्तर बिगड़ती चली जाती है। दूसरी ओर पूंजीपति वर्ग श्रमिकों से अतिरिक्त श्रम लेकर अपने अतिरिक्त मूल्य में वृद्धि करता रहता है। इस तरह धीरे-धीरे कालान्तर में समाज के पूंजीपति वर्ग पूरा समाज का संसाधन अपनी गिरफ्त में ले लेते हैं और श्रमिक तीव्र निर्धनतर के कुचक्र में फंस जाता है।

- **अलगाव**

कार्य स्थल पर मशीनों की स्थिति एवं वहां पर मजदूरों के स्वास्थ्यवर्द्धक माहौल तथा उत्पादक प्रशासन की सहयोगात्मक परिस्थितियां अच्छी न होना तथा मजदूर गरीबी के कारण अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उपभोग न कर सकने की क्षमता के कारण उत्पादन प्रणाली से उनका अलगाव होने लगता है।

- **वर्ग एकता एवं क्रान्ति**

औद्योगिक विकास के अगले स्तर में न केवल सर्वहारा वर्ग की सदस्य संख्या बहुत बढ़ जाती है। बल्कि यह वर्ग एक बहुत बड़े जनसमूह के रूप में परिवर्तित होने लगता है। जब इस वर्ग की सदस्य संख्या बढ़ती है तब वह अपने आपको अत्यधिक शक्तिशाली अनुभव करने लगता है तथा समान समस्या एवं समान हित होने के कारण सर्वहारा वर्ग में एकता स्थापित होने लगती है तथा कुछ समय बाद श्रमिक संगठित होकर पूंजीपतियों के विरूद्ध हिंसक संघर्ष आरम्भ कर देते हैं तथा समाज की सम्पूर्ण आर्थिक संरचना को बदल देते हैं।

- **सर्वहारा का अधिनायकवाद**

सर्वहारा वर्ग द्वारा जब क्रान्ति की जाती है तो इससे पूंजीवादी व्यवस्था नष्ट होकर समाज की सम्पूर्ण शक्ति सर्वहारा को प्राप्ति होती है और सर्वहारा का अधिनायकत्व स्थापित हो जाता है।

14.4 अभ्यासार्थ बोध प्रश्न

1. वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
2. अब तक के समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। मार्क्स के संदर्भ में विवेचना कीजिए।

14.5 संदर्भ ग्रन्थ

बाटोमोर, टी0बी0, मार्क्स वादी समाजशास्त्र मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली।

14.6 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

अग्रवाल, जी0के0, प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक- साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स (प्रा0) लिमिटेड।

पाण्डेय,गणेश,पाण्डेय अरूणा-सामाजिक विचारधारा एवं सामाजिक विचारक, राधा पब्लिकेशन,दिल्ली।

मुकर्जी, राधाकमल, सामाजिक विचारधारा, विवके प्रकाशन, दिल्ली।

इकाई-15 सामाजिक क्रिया

Social Action

इकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 समाजशास्त्र एक तार्किक-प्रयोगात्मक विज्ञान

15.3 सामाजिक क्रिया: तर्कसंगत क्रिया एवं अतर्कसंगत क्रिया

15.4 सारांश

15.5 पारिभाषिक शब्दावली

15.6 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

15.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

15.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

15.9 निबंधात्मक प्रश्न

15.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई खंड में हमने विलफ्रेडो परेटो का समाजशास्त्र में कुछ योगदानों की विस्तार से चर्चा की गई है। जिसमें सामाजिक क्रिया- तार्किक व अतार्किक की सविस्तार उदाहरण सहित देकर समझाया गया है। परेटो के अनुसार प्रत्येक सामाजिक घटना के दो पहलू हो सकते हैं। पहला पहलू यह है कि जैसाकि घटना वास्तव में है और दूसरे पहलू में वह घटना किसी व्यक्ति विशेष के मस्तिष्क में अंकित है। प्रथम वस्तुनिष्ठ है व दूसरी व्यक्तिनिष्ठ है। और अधिक स्पष्ट रूप में, प्रत्येक सामाजिक क्रिया के दो पक्ष होते हैं- लक्ष्य और साधन। हम किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कुछ साधनों का प्रयोग करते हैं, लेकिन ये साधन किस प्रकार के होंगे या इनकी प्रकृति कैसी होगी यह उन कार्यों की प्रकृति पर निर्भर करता है जिन्हें हम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए काम में लेते हैं। परेटो के मतानुसार वे कार्य जिनका आधार वस्तुनिष्ठ है, तर्कसंगत क्रियाएं कहलाती हैं जबकि जिन क्रियाओं का आधार व्यक्तिनिष्ठ है, उन्हें

हम अतर्कसंगत क्रिया कहते हैं। इसी के साथ विशिष्ट व भ्रान्त तर्क की अवधारणा को भी इस इकाई में संक्षिप्त रूप से समझाया गया है।अंततः इस इकाई की विषय वस्तु पूर्ण रूप से विलफ्रेडो परेटो के सिद्धांत सामाजिक क्रिया-तार्किक व अतार्किक केन्द्रित है। जिससे आप तार्किक व अतार्किक क्रिया को भली-भांति समझ सके।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपके लिए संभव होगा-

1. समाज के भीतर होने वाली सामाजिक क्रिया को बताना।
2. समाजशास्त्र को तार्किक प्रयोगात्मक विज्ञान के रूप में विवेचना करना,
3. परेटो की तार्किक व अतार्किक क्रिया की व्याख्या करना,
4. विशिष्ट व भ्रान्त तर्कों की समाज में अवधारणा को समझना तथा
5. समाज में वस्तुनिष्ठ व व्यक्तिनिष्ठ क्रिया को समझना।

15.2 समाजशास्त्र एक तार्किक-प्रयोगात्मक विज्ञान

यहां पर हम सबसे पहले समाजशास्त्र एक तार्किक-प्रयोगात्मक विज्ञान को जानेंगे। इटली के प्रमुख सामाजिक विचारक विल्फ्रेडो परेटो का नाम उन प्रमुख विद्वानों में से एक है जिन्होंने समाजशास्त्रीय चिन्तन को व्यवस्थित बनाने तथा उसे एक दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आरम्भ में एक भौतिकविज्ञानी से अर्थशास्त्री तथा बाद में समाजशास्त्री के रूप में परेटो का चिन्तन न केवल बहुमुखी रहा अपितु विभिन्न विज्ञानों के बीच एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अपनाते हुए उन्होंने जो विचार प्रस्तुत किए, उनमें तार्किकता और व्यवहारवाद का एक समन्वय देखने को मिलता है। परेटो ने समाजशास्त्र एक तार्किक-प्रयोगात्मक विज्ञान के बारे में बताया। जिसका विवरण निम्न है-

परेटो का सर्वप्रमुख प्रयास उन साधनों को ज्ञात करता था जिनकी सहायता से मानव-व्यवहारों को प्रभावित करने वाले अतार्किक आधारों की तार्किक दृष्टिकोण से विवेचना की जा सके। परेटो कभी भी वेबलिन तथा उन दूसरे विद्वानों से सहमत नहीं रहे जो मानव-व्यवहारों की विवेचना आर्थिक सिद्धांतों के आधार पर करना चाहते थे। अपितु, परेटो का विश्वास था कि स्वयं आर्थिक सिद्धांतों की विवेचना समाजशास्त्रीय अवधारणाओं के आधार पर होनी चाहिए। इस दृष्टिकोण के द्वारा मानव व्यवहार से सम्बन्धित उन विशेषताओं को सही ढंग से समझा जा सकता है जिनकी विवेचना करने में आर्थिक विश्लेषण और दूसरे अमूर्त सिद्धांत अपर्याप्त सिद्ध हो चुके हैं। इस सन्दर्भ में परेटो ने स्पष्ट किया कि समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का विकास एक ऐसी तार्किकता पर आधारित होना आवश्यक है जो आर्थिक और राजनीतिक चिन्तन को सही दिशा दे सके। समाजशास्त्र का रूप क्या हो सकता है? इसे स्पष्ट करते हुए परेटो नें लिखा है कि समाजशास्त्र वह सामाजिक विज्ञान है जिसका मुख्य कार्य व्यक्तियों की अतार्किक क्रियाओं

का विश्लेषण करने के लिए एक तार्किक-प्र्रयोगात्मक आधार प्राप्त करना है। इसलिए समाजशास्त्र में उन प्रेरणाओं का अध्ययन किया जाना चाहिए जो सामाजिक जीवन के एक साधन के रूप में लोगों की अतार्किक क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। यही कारण हे कि अन्य विद्वानों ने परेटो के समाजशास्त्र को 'मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्र' के नाम से सम्बोधित किया है।

वास्तविकता यह है कि परेटो ने जिन अवधारणाओं की सहायता से समाजशास्त्रीय चिन्तन को एक नया रूप देने का प्रयत्न किया, उनमें मनोवैज्ञानिक तत्वों का कुछ सीमा तक समावेश अवश्य है लेकिन मूल रूप से उनके समाजशास्त्र को 'समन्वयात्मक समाजशास्त्र' ही कहा जा सकता है। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समन्वयात्मक है कि केवल इसी के द्वारा मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाले उन आधारों को समझा जा सकता है जिनका अध्ययन अन्य सामाजिक विद्वानों द्वारा करना संभव नहीं है। इसके पश्चात भी विभिन्न सामाजिक विज्ञान समाजशास्त्र से इसलिए सम्बन्धित हैं कि वे अपने-अपने अध्ययनों द्वारा विभिन्न कारकों के प्रभाव को जानने में समाजशास्त्र की सहायता कर सकते हैं तथा स्वयं भी समाजशास्त्रीय अवधारणाओं से लाभ उठा सकते हैं। इस प्रकार परेटो समाजशास्त्र के रूप में एक ऐसे विज्ञान को विकसित करना चाहते थे जिसमें विभिन्न प्रकार की सामाजिक घटनाओं की समानताओं के आधार पर तार्किक सिद्धांतों को विकसित किया जा सके। इस प्रकार परेटो नें अपने समाजशास्त्र को 'तार्किक प्रयोगात्मक विज्ञान' का नाम दिया। क्याकि इसे एक विज्ञान के रूप में तार्किक प्रयोगात्मक पद्धति की सहायता से ही विकसित किया जा सकता है।

परेटो से पुर्व अनेक विद्वानों ने समाजशास्त्रीय अध्ययनों के लिए भौतिक विज्ञानों की पद्धति को अपनाने पर बल दिया था लेकिन परेटो नें अपनी पुस्तक 'ट्रीटीज ऑन जनरल सोशियोलाजी' में काम्ट, स्पेन्सर तथा अनेक दूसरे विद्धानों द्वारा बतलायी गयी पद्धतियों को अस्वीकार किया। परेटो का स्पष्ट मत था कि जिन पद्धतियों की सहायता से भौतिक विज्ञानों की विषय-वस्तु का अध्ययन किया जाता है, उनका उपयोग समाजशास्त्रीय अध्ययनों के लिए उपयुक्त नहीं है। वैज्ञानिक समाजशास्त्र के लिए जिस पद्धति की आवश्यकता है, वह निरीक्षण वस्तुनिष्ठ अनुभवों तथा इनके आधार पर निकाले गए तर्कपूर्ण निष्कर्षे से सम्बन्धित होना चाहिए। वास्तव में, समाजशास्त्र एक समन्वयात्मक विज्ञान है, अतः इससे सम्बन्धित अध्ययन अवलोकन, परीक्षण व निरीक्षण पर आधारित होना आवश्यक है। परेटो ने इस अध्ययन-पद्धति को 'तार्किक प्रयोगात्मक पद्धति' का नाम दिया। जिसे आप यहा जान गये होंगे।

परेटो द्वारा प्रयुक्त इटेलियन शब्द 'एक्सपेरिएन्जा' का तात्पर्य विशुद्ध रूप में किये जाने वाले प्रयोगों से न होकर अवलोकन तथा आवश्यकता होने पर उस नियंत्रित अवलोकन से है जिसकी सहायता से प्राप्त परिणामों को तार्किक रूप से प्रमाणित किया जा सके। इस प्रकार तार्किक-प्रयोगात्मक वह पद्धति है जो अवलोकन पर आधारित प्रयोगों को महत्व देती है तथा उनसे प्राप्त परिणामों को तर्क द्वारा प्रमाणित करने की क्षमता रखती है। परेटो के अनुसार तर्क का तात्पर्य यह है कि अवलोकन के आधार पर विभिन्न घटनाओं के बीच जो सहसम्बन्ध पाया जाता है, उससे प्राप्त होने वाले परिणामों को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत किया जाये। प्रयोगात्मक शब्द में अवलोकन तथा प्रयोग दोनों

की विशेषताओं का समावेश है। प्राकृतिक विज्ञान इसलिए प्रयोगात्मक होते हैं क्योंकि इनसे सम्बन्धित अवधारणाएं प्रयोगों के द्वारा ही विकसित की जा सकती हैं। इनसे भिन्न, समाजशास्त्रीय अध्ययनों के लिए नियंत्रित अवलोकन को ही प्रयोग का पूरक माना जा सकता है। इस दृष्टिकोण से समाजशास्त्र के लिए तार्किक-प्रयोगात्मक पद्धति एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा प्रयोगसिद्ध समानताओं अथवा विभिन्न तथ्यों के बीच रहने वाले नियमित सम्बन्धों को ज्ञात किया जा सके।

अतः स्पष्ट किया कि समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में तभी विकसित किया जा सकता है कि जब अनुभव के आधार पर विभिन्न सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाए, निरीक्षण और प्रयोग के द्वारा तथ्यों की परीक्षा की जाए एवं विभिन्न तथ्यों के बीच पाए जाने वाले समानताओं के आधार पर तार्किक नियमों का निर्माण किया जाय। आप यहा उपर्युक्त विषयक से भली भाति परिचित हो गए होंगे।

15.3 सामाजिक क्रिया - तर्कसंगत एवं अतर्कसंगत क्रिया

आइये सबसे पहले सामाजिक क्रिया को जानने का प्रयास करतेे हैं। आखिर सामाजिक क्रिया क्या हैे? कोई भी व्यवहार जो किसी उद्देश्य प्राप्ति के लिए किया जाता है वह सामाजिक क्रिया है। अगर उद्देश्य नही है तो वह सामाजिक क्रिया नही है। क्रियाएं अनेक प्रकार की हो सकती है। लेकिन हमारा यहा सम्बन्ध सामाजिक क्रिया से है। मानव एक सामाजिक प्राणी है। आवश्यकता पूर्ति के लिए उसे अन्य व्यकितयों से सहारा लेना होता हैे, साधन जुटाने होते है, अन्य व्यक्तियो के संदर्भ में व्यवहार करना होता है। जिसके फलस्वरूप सामाजिक क्रिया अस्तित्व में आती है। सामाजिक क्रिया के लिए कर्ता, परिस्थित व प्रेरणा का होना आवश्यक हैै। मैक्स वेबर लिखते है कि, सामाजिक क्रिया वह क्रिया है जिसमें कर्ता या कर्ताओ के द्धारा लगाये गये प्रातीतिक अर्थ के अनुसार दूसरे व्यक्तियों के मनोभाव एवं क्रियाओ का समावेश हो और उन्ही के अनुसार उनकी गतिविधि हो। एवं पारसन्स कहते है कि सामाजिक क्रिया कर्ता कि परिस्थिति व्यवस्था में वह प्रक्रिया है जिसका अकेले कर्ता के लिए अथवा सामूहिक रूप में उस समूह के व्यक्तियो के लिए प्रेरणात्मक महत्त्व होता है। सामाजिक क्रिया के आवश्यक तत्वो मे कर्ता, लक्ष्य, परिस्थित व प्रेरणा का होना आवश्यक हैै। अतः आप यहा सामाजिक क्रिया से भली भाति परिचित हो गए होंगे। आइए अब हम परेटो की सामाजिक क्रिया को जानने का प्रयास करते हैं।

परेटो ने अपने अध्ययन में समाज में पाई जाने वाली मानवीय क्रियाओं का वर्गीकरण दो भागों में किया है।-

अ) तर्कसंगत क्रिया (Logical Action) तथा

ब) अतर्कसंगत क्रिया (Non-Logical Action)।

परेटो ने तार्किक व अतार्किक क्रियाओ का उल्लेख किया है, उनके अनुसार अतार्किक क्रिया विशेष रूप से महत्वपुर्ण है। परेटो के विचार में इस प्रकार का वर्गीकरण अत्यन्त ही आवश्यक है। आपने इन दोनों प्रकार की

क्रियाओं को दो आधारों में बांटा है। परेटो के मतानुसार तर्कसंगत क्रियाओं का आधार सामान्यतः वस्तुनिष्ठ होता है। जबकि अतर्कसंगत क्रियाओं का आधार व्यक्तिनिष्ठ होता है। इस कारण तर्कसंगत और अतर्कसंगत क्रिया को समझने से पहले वस्तुनिष्ठ तथा व्यक्तिनिष्ठ का अर्थ समझ लेना उचित होगा।

परेटो का कथन है कि प्रत्येक सामाजिक घटना के दो पहलू हो सकते हैं-

1) जैसा कि घटना वास्तव में है

2) जैसी कि वह किसी व्यक्ति विशेष के मस्तिष्क में अंकित है।

प्रथम प्रकार की घटना को परेटो ने वस्तुनिष्ठ तथा द्वितीय को व्यक्तिनिष्ठ कहा है। आपका कथन है कि इस प्रकार का विभाजन बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि एक केमिस्ट को जोकि अपनी प्रयोगशाला में प्रयोगात्मक क्रिया में व्यस्त है, और एक उस व्यक्ति जो जादू की क्रिया दिखा रहा है, एक ही श्रेणी के अन्तर्गत रखना या मान लेना कदापि उचित न होगा। प्रथम व्यक्ति की क्रिया का आधार वस्तुनिष्ठ है, इसलिए वह वैज्ञानिक है। जबकि दूसरा व्यक्ति केवल व्यक्तिनिष्ठ आधारों पर कार्य करता है। इसलिए वह वैज्ञानिक नही है परेटो के अनुसार वस्तुनिष्ठ तथा व्यक्तिनिष्ठ आधारों का भेद महत्वपूर्ण, उपयोगी तथा उचित है; फिर भी इन दोनों के बीच कोई दृढ़ विभाजक रेखा खींचना संभव नहीं है।

परेटो ने वस्तुनिष्ठ तथा व्यक्तिनिष्ठ आधारों का भी स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है कि प्रत्येक सामाजिक या व्यक्तिगत क्रिया के दो पक्ष होते हैं- लक्ष्य और साधन। हम किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कुछ साधनों का प्रयोग करते हैं; परन्तु ये साधन किस प्रकार के होंगे या उनकी क्या प्रकृति होगी यह उन कार्यों की प्रकृति पर निर्भर करता है। जिन्हें कि हम लक्ष्य की प्राप्ति करने के लिए काम में लाते हैं। जैसे- कुछ ऐसे कार्य होते हैं जोकि लक्ष्य तथा साधन दोनों के ही दृष्टि से उचित होते हैं दूसरे शब्दों में, ऐसे कार्य ठीक तथा अनुभवसिद्ध होते हैं एवं तार्किक आधार पर लक्ष्य और साधन के बीच सामंजस्य स्थापित करते हैं। इस प्रकार के यथार्थ तथा तर्कयुक्त कार्यों को वस्तुनिष्ठ कहते हैं। इसके विपरीत, ऐसे भी कार्य होते हैं जिनमें लक्ष्य और साधन के बीच तार्किक संगति का अभाव होता है, अर्थात् ऐसे कार्य जोकि यथार्थ, अनुभवसिद्ध तथा तर्कसंगत नहीं होते हैं, उनको व्यक्तिनिष्ठ कहते हैं। अतः स्पष्ट है कि परेटो के मतानुसार वे कार्य, जिनका आधार वस्तुनिष्ठ है, तर्कसंगत क्रिया हैं और वे कार्य, जिनका कि आधार व्यक्तिनिष्ठ है। अतर्कसंगत क्रिया हैं।

इस प्रकार ''परेटो के लिए क्रिया की प्रमुख विशेषता तर्क के साथ उसका सम्बन्ध है।'' इस कथन के अनुसार, प्रत्येक क्रिया का एक तार्किक आधार होता है। यह जरूरी नहीं है कि यह तार्किक आधार सर्वमान्य या सबके द्वारा स्वीकृत या प्रयोगसिद्ध ही हो। हो सकता है कि क्रिया को करने वाला कर्ता के अपने दृष्टिकोण से उस क्रिया का कोई तार्किक आधार हो और उसी तार्किक आधार पर वह अपनी क्रिया का औचित्य दर्शाने का प्रयत्न करें। परेटो ने इसे ही 'भ्रान्त-तर्क' की संज्ञा दी है। इसके विपरीत, यह भी हो सकता है कि एक क्रिया का तार्किक आधार इस प्रकार का हो जोकि वास्तव में प्रयोगसिद्ध हो। और भी स्पष्ट रूप में, ऐसी अनेक क्रियाएं होती हैं। जिनके लक्ष्य तथा

साधन के बीच सामंजस्य होता है उसे तर्क के आधार पर वास्तव में समझाया जा सकता है, परन्तु ऐसी भी क्रियाएं होती हैं जिनके लक्ष्य तथा साधनों के बीच पाए जाने वाले तथाकथित सामंजस्य को उन क्रियाओं को करने वाला कर्ता अपने तर्क द्वारा समझा तो अवश्य ही देता है परन्तु वह तर्क वास्तव में भ्रान्त-तर्क ही होता है। इस प्रकार क्रिया का संबंध तर्क से होता अवश्य ही है, चाहे वह तर्क प्रामाणिक तर्क हो या भ्रान्त तर्क। जब एक क्रिया प्रामाणिक तर्क (अर्थात ऐसा तर्क जो केवल कर्ता के दृष्टिकोण से ही नहीं, वरन् उस विषय में अधिक व्यापक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की दृष्टिकोण से सही है) से संबंधित होती है। तो उसे तर्कसंगत क्रिया कहते हैं, और जब क्रिया केवल एक ऐसे तर्क से संबंधित है जोकि केवल कर्ता की दृष्टिकोण से उचित है तो उसे अतर्कसंगत क्रिया कहेंगे। इसलिए परेटो के मतानुसार क्रिया की किसी भी विवेचना व विश्लेषण में हमें उसके अन्तर्निहित तर्क के सम्बन्ध में सचेत रहना चाहिए और यह देखना चाहिए कि किस प्रकार के तर्क से वह क्रिया सम्बन्धित है, क्योंकि इसी के आधार पर क्रिया की वास्तविक प्रकृति अर्थात् वह व्यक्तिनिष्ठ है या वस्तुनिष्ठ है, यह जानना हमारे लिए सम्भव व सरल होगा। वैसे तो प्रत्येक कर्ता के द्वारा निरन्तर यही प्रयत्न होता रहता है कि वह अपने कार्य या क्रिया को इस भांति सम्पन्न करें कि वह अधिक-से-अधिक मात्रा में वस्तुनिष्ठ ही प्रतीत हो, चाहे वास्तव में वह वैसा भले ही ना हो। क्रिया की प्रक्रिया में तर्क का सर्वप्रमुख कार्य एक क्रिया-विशेष के औचित्य को प्रमाणित करना होता है। इस प्रमाण का आधार सदैव वस्तुनिष्ठ ही होगा, इसकी कोई निश्चितता नहीं होती। व्यक्तिनिष्ठ आधारों पर भी क्रिया का औचित्य प्रमाणित किया जा सकता है।

इस प्रकार परेटो के अनुसार, मानवीय क्रियाएं तर्कसंगत हो सकती हैं औ अतर्कसंगत भी। तर्कसंगत क्रिया ही वास्तव में प्रामाणिक होती हैं। क्योंकि इस प्रकार की क्रियाएं निरीक्षण और अनुभव के क्षेत्र में अन्तर्गत होती हैं। इसीलिए तर्कसंगत क्रियाएं विज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं, जबकि अतर्कसंगत क्रियाएं काल्पनिक होने तथा निरीक्षण औ अनुभवसिद्ध न होने के कारण विज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आती हैं, यद्यपि इनका अध्ययन विज्ञान द्वारा होता है।

उक्त लिखित विवेचना से यह स्पष्ट है कि परेटो के अनुसार, ‘‘केवल वे क्रियाएं तर्कसंगत हैं, जोकि तर्कपूर्ण रीति से साधन को लक्ष्य के साथ जोड़ती हैं, केवल उस कर्ता की दृष्टि से नहीं जो उस क्रिया को करता है बल्कि उन अन्य व्यक्तियों की दृष्टि से भी जो उसके विषय में अधिक व्यापक ज्ञान रखते हैं।’’

परेटो के अनुसार मानव-क्रियाओं के संबंध में एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि सर्वत्र और सभी कालों में तर्कसंगत क्रियाओं का नहीं, बल्कि अतर्कसंगत क्रियाओं का ही बोलबाला रहा है। दूसरे शब्दों में, मानव की अधिकतर क्रियाएं अतर्कसंगत होती हैं। ये क्रियाएं तर्क से नहीं बल्कि एक विशिष्ट मानसिक अवस्था से उत्पन्न होती हैं। इसीलिए उस क्रिया को करने वाला उस क्रिया के पक्ष में अनेक युक्तियां पेश करता है तथा उसे उचित प्रमाणित करने का प्रयत्न करता रहता है। उदाहरणार्थ, सामाजिक निषेध को ही लिया जा सकता है। इस प्रकार के निषेध विशिष्ट मानसिक अवस्था की ही उपज होते हैं। साथ ही, वे निषेध उचित हैं, इसे प्रमाणित करने के लिए ईश्वरीय आज्ञा से लेकर पौराणिक गाथा तक का सहारा लिया जाता है। परन्तु वास्तव में इनमें से कोई भी निषेध

तर्कसंगत नहीं होता। तार्किक रुप में इन निषेधों की व्याख्या नहीं की जा सकती है। परन्तु परेटो के मतानुसार इसका यह अर्थ कदापि नही है कि इस प्रकार के निषेध या अन्य अतर्कसंगत क्रियाएं आवश्वक रुप में बेकार तथा अनुपयोगी ही होती है। एक निषेध का समुदाय-विशेष में महत्वपूर्ण स्थान तथा कार्य हो सकता है; जबकि वही निषेध दूसरे समाज या समुदाय के लिए निरर्थक और हानिकारक भी हो सकता है। एक समुदाय-विशेष में कोई सामाजिक निषेध तब पनपता है जबकि किसी कार्य के प्रति उस समुदाय के लोगों का घृणा-भाव हो और वे उस कार्य को उचित और अच्छा न मानते हों। इस कारण इस प्रकार के समाजिक निषेधों को केवल सामूहिक अभिमति प्राप्त होती है; वे तर्कसंगत नही भी हो सकते हैं और बहुधा होते भी नही है। परन्तु इनको मानने वाले तथा इन्हें लागू करने वाले सभी लोग इनके पक्ष में अनेक तर्को को प्रस्तुत करते है, ताकि उनके अतार्किक रुप छिप जाएं या उस विषय में लोग कुछ अनुमान न लगा सकें। परेटो के लिए सामाजिक जीवन की सम्पूर्ण घटना समीकरणों की वह श्रृखला है जिनमें कि उस समाज के लोग अपनी अतर्कसंगत क्रियाओं की तर्कसंगत क्रियाओं की वेशभूषा पहनाकर इस प्रकार प्रस्तुत करने का उत्कट प्रयास करते है कि उनकी क्रियाओं का अतर्कसंगत रुप भी उन्हें तथा दुसरों का तर्कसंगत लगने लगे। तर्किक व अतार्किक क्रिया के सामने मानव के समक्ष तीन प्रकार की समस्याए आती है। पहली यह है कि लक्ष्य व्यक्तिगत व सामाजिक दोनो हो सकते है। लक्ष्य के ज्ञान के अभाव मे साधन को तार्किक व अतार्किक समक्षना एक कठिन कार्य है। दुसरी यह है कि जब लक्ष्य का संबध पारलौकिक हो तब तो जानना और भी कठिन हो जाता है कि लक्ष्य व साधन के बीच उचित संबध है या नही। तीसरा यह है कि उचित व अनुचित कार्यो का पता लगाना भी एक कठिन कार्य है क्योकि एक कार्य जो एक के लिए उचित है हो सकता है कि वह दुसरे के लिए अनुचित हो। अतः अन कठिनाइयो के कारण ही मानव समाज मे अतार्किक क्रियाओं की प्रधानता रही है। और समाज का अस्तित्व भी इसी पर निर्भर करता है। यहा प्रश्न यह है कि मानव अतार्किक क्रियाए क्यों करता है। इनके परेटो ने कुछ कारक बताये है। जिसमें प्रमुख्यता से भा्रन्त तर्क है। भ्रान्त तर्को पर आधारित क्रियाएं अतार्किक होती हैं। कुछ ऐसी क्रियाएं होती हैं जिनके लक्ष्य और साधनों को कर्ता अनेक ऐसे तर्कों के आधार पर स्पष्ट कर देता है कि जो केवल उसी के दृष्टिकोण से उचित है। इस तरह के तर्क को भ्रान्त तर्क कहते हैं। इसके साथ ही चालक, मनोभाव व स्वार्थ आदि है। अतः आप यहा परेटो के सामाजिक क्रिया में तार्किक व आतार्किक को समक्ष गये होगें।

तार्किक तथा अतार्किक क्रियाओं के इस सम्पूर्ण विश्लेषण द्वारा परेटो ने यह स्पष्ट किया कि अतार्किक क्रियाएं भले ही समाज में व्यापक रूप से पायी जाती हो लेकिन यह प्रमाणिक और अनुभवसिद्ध न होने के कारण किसी विज्ञान की अध्ययन-वस्तु नहीं बन सकतीं। समाजशास्त्र स्वयं एक ऐसा विज्ञान है जो तार्किक-प्रयोगात्मक पद्धति के आधार पर ही विकसित हो सकता है। इस दृष्टिकोण से समाजशास्त्रीय अध्ययनों में केवल तार्किक क्रियाओं का ही समावेश होना चाहिए। इसप्रकार आप यहा समाज में क्रियाये से परिचित हो गये होगें।

बोध प्रश्न-1

i) परेटो द्वारा मानवीय क्रियाओं के वर्गीकरण को बतलाइए।

....
....
....
....
....
....

ii) अतर्कसंगत क्रियाओं को संक्षिप्त में लिखिए?

....
....
....
....
....
....

iii) विशिष्ट चालक क्या है?

....
....
....
....
....
....

iv) 'भ्रांत तर्क' को संक्षिप्त में समझाइए?

....
....
....
....
....
....
....

सत्य असत्य बतलाइए-

v) परेटो के लिए क्रिया की प्रमुख विशेषता तर्क के साथ उसका सम्बन्ध है।

(सत्य/असत्य)

खाली स्थान भरिये-

vi) परेटो ने समाजशास्त्र को ....का नाम दिया।

vii) जब कोई क्रिया कुछ भ्रान्त तर्कों, भावनाओं अथवा संवेगों पर आधारित होती है तब इसे ....

............कहा जाता है।

viii) तार्किक क्रियाओं का आधार .... होता है।

15.4 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा है कि इटालियन सामाजिक विचारक विलफ्रेडो परेटो की मानवीय क्रियाओं की व्याख्या के बारे में पढ़ा कि मानवीय क्रियाओं को दो भागों में बांटा गया- तार्किक क्रिया एवं अतार्किक क्रिया। जिसमें बताया गया कि तार्किक व अतार्किक क्रिया के दो पक्ष होते हैं- लक्ष्य और साधन। कुछ क्रियाएं ऐसी होती हैं जिनके द्वारा तार्किक आधार पर लक्ष्य और साधनों के बीच एक स्पष्ट सामंजस्य देखने को मिलता है। इन्हीं क्रियाओं को तार्किक/वस्तुनिष्ठ क्रियाएं कहते हैं। वहीं दूसरी ओर अनेक क्रियाएं अथवा मानव व्यवहार इस प्रकार के होते हैं जिनमें लक्ष्य व साधनों बीच कोई तार्किक संगति नहीं होती। यह क्रियाएं भावना प्रधान होती हैं। इसलिए इन्हें अतार्किक क्रिया बताया गया है। इन तार्किक व अतार्किक क्रियाओं द्वारा समाज में मानवीय क्रियाओं को समझाया गया है। और साथ में विशिष्ट चालक जिसमें मूल प्रवृतियों और भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है एवं भ्रान्त तर्क जिसमें कर्ता के भ्रान्त विचार तर्क होते हैं को भी स्पष्टतः बताया गया है। परेटो कहते हैं कि अतार्किक क्रियाओं को निरर्थक तथा व्याधिकीय नहीं समझना चाहिये अपितु इनसे तार्किक क्रियाओं के पक्षों को स्पष्ट करना चाहिए। अतः स्पष्ट आप इस इकाई में सामाजिक क्रियाओं के तार्किक व अतार्किक आदि पक्षों को जान गये होंगे।

15.5 परिभाषिक शब्दावली

तार्किक क्रियाएं- तार्किक क्रियाएं वस्तुनिष्ठ होती है अर्थात कर्ता तथा उस विषय का ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों के मस्तिष्क में जब किसी क्रिया के लक्ष्य और साधनों के बीच एक तार्किक सम्बन्ध स्पष्ट होता है तब ऐसी क्रिया को हम तार्किक क्रिया कहते हैं।

अतार्किक क्रिया- अतार्किक क्रियाओं का आधार भावानात्मक होता है अर्थात जब कोई क्रिया कुछ भ्रान्त तर्का, भावनाओं अथवा संवेगों पर आधारित होती है तब इसे अतार्किक क्रिया कहते हैं। अतार्किक क्रिया का तात्पर्य ऐसी सभी क्रियाओं से है जो तार्किकता की परिधि से बाहर होती हैं।

तर्क-निरीक्षण पद्धति- इस पद्धति में परेटो ने दो वस्तुओं पर बल दिया है- तर्क तथा निरीक्षण। परेटो के अनुसार प्रघटना के दो पक्ष होते हैं- वस्तुगत, विषयगत। वैज्ञानिक अध्ययन हेतु निरीक्षण द्वारा वस्तुगत रूप को समझना तथा तर्क द्वारा सामान्यीकरण को जानना आवश्यक है। यह पूर्व धारणाओं का कड़ाई से निषेध करता है।

विशिष्ट चालक (अवशेष)- मूल प्रवृत्तियों और भावनाओं की अभिव्यक्ति है।

भ्रान्त तर्क- भ्रान्त तर्कों पर आधारित क्रियाएं अतार्किक होती हैं। कुछ ऐसी क्रियाएं होती हैं जिनके लक्ष्य और साधनों को कर्ता अनेक ऐसे तर्कों के आधार पर स्पष्ट कर देता है कि जो केवल उसी के दृष्टिकोण से उचित है। इस तरह के तर्क को भ्रान्त तर्क कहते हैं।

15.6 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

i) परेटो ने समाज में पाई जाने वाली मानवीय क्रियाओं के दो प्रकार अर्थात तर्कसंगत क्रियाएं एवं अतर्कसंगत क्रियाएं बतलायी हैं।

ii) अतार्किक क्रियाओं का आधार भावानात्मक होता है अर्थात जब कोई क्रिया कुछ भ्रान्त तर्कों, भावनाओं अथवा संवेगों पर आधारित होती है तब इसे अतार्किक क्रिया कहते हैं। अतार्किक क्रिया का तात्पर्य ऐसी सभी क्रियाओं से है जो तार्किकता की परिधि से बाहर होती हैं।

iii) विशिष्ट चालक मूल- प्रवृत्तियों और भावनाओं की अभिव्यक्ति है। ये मानव व्यवहार के अपेक्षाकृत अधिक स्थिर पक्ष होते हैं।

iv) कुछ क्रियाएं ऐसी होती हैं जिनके लक्ष्य और साधनों को कर्ता अनेक ऐसे तर्कों के आधार पर स्पष्ट कर देता है जो केवल उसी के दृष्टिकोण से उचित होते हैं। इस तरह के तर्क को परेटो ने 'भ्रान्त तर्क' कहा है। ऐसे तर्कों पर आधारित क्रियाएं ही अतार्किक क्रियाएं होती हैं।

v) सत्य

vi) तार्किक प्रयोगात्मक विज्ञान

vii) अतार्किक क्रिया

viii) वस्तुनिष्ठ

15.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

हारालाम्बोस एम0, (1998), सोशियोलोजी: थीम्स एण्ड प्रर्सपेक्टिव, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली

टर्नर, जे0 एच0, (1916) स्ट्रक्चर आफ सोशियोलोजिकल थ्योरी, रावत पब्लिकेशन, जयपुर

9.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

गुप्ता एवं शर्माए (2006) समाजशास्त्रए साहित्य भवन पब्लिकेशनए आगरा

सिहं जे0 पी0ए (2008) समाजशास्त्र-अवधारणाएं एवं सिद्धान्तए पीएचआई लर्निंग नई दिल्ली

15.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. विलफ्रेडो परेटो द्वारा प्रतिपादित तार्किक व अतार्किक क्रियाओं की समाज में सविस्तार व्याख्या कीजिए।

2. परेटो के विचार में समाजशास्त्र एक तार्किक प्रयोगात्मक विज्ञान है, चर्चा कीजिए।

3. समाज में सामाजिक क्रियाओं के संदर्भ में परेटो के योगदान की विवेचना कीजिए व साथ ही संक्षिप्त में विशिष्ट व भ्रान्त तर्कों को भी समझाइए।

इकाई-16 अभिजात वर्ग के परिभ्रमण का सिद्धांत

Circulation of Elite Theory

इकाई की रूपरेखाः

16.0 प्रस्तावना

16.1 उद्देश्य

16.2 पैरेटो का समाजशास्त्र में योगदान

16.3 चक्रीय सिद्वान्त या अभिभ्रमण

16.4 सारांश

16.5 संदर्भ सूची

16.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.7 निबंधात्मक प्रश्न

16.0 प्रस्तावना

समाजशास्त्र को एक वैज्ञानिक रूप प्रदान करने में पैरेटो का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। इसलिए पैरेटो को समाजशास्त्र के प्रवर्तको में से एक अग्रणी सामाजिक विचारक के रूप में पहचाना जाता है। पैरेटो का जन्म ईटली में हुआ था। मूलतहः वह गणितज्ञ और अर्थशास्त्री थे। समाजशास्त्र को सही तरह और सुनोयोजित रूप से परिभाषित करने का कार्य किया। उन्होने समाजशास्त्र को एक तार्किक - प्रयोगात्मक विज्ञान के रूप में पहचान दिलायी। जिसका अर्थ यह कि यह समाज विज्ञान प्रयोग में लाया जा सकता है। इसकी प्रकृति आनुभाविक है लेकिन यह आनुभाविकता तर्कपारक है।

16.1 उददेश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपके लिए संभव होगा.

1. पैरेटो का समाजशास्त्र में योगदान को जान पाएंगे
2. पैरेटो के चक्रीय सिद्वान्त या अभिभ्रमण को भी जान पाएंगे

16.2 पैरेटो का समाजशास्त्र में योगदान

परेटो का जन्म 15 जूलाई सन् 1848 में पेरिस में हुआ। उनके पिता जनेवा से निकाल दिया गया था तथा वह पेरिस में आकर रहने लगे थे । परेटो की माता जी फ्रेन्च थी । परेटो के पिता का नाम मैजिनी था। वह मानवतावादी और आषावादी थे किन्तु उनको अपने विचारों पर सफलता प्राप्त न हो सकी। इसी वजह से उन्हे पेरिस में जा कर रहना पडा। इसी दौरान उनकी पत्नी ने परेटो को जन्म दिया। किन्तु परेटो की 7 साल की अवस्था में उनका परिवार फिर इटली वापस लौट आया और वही पर परेटो की षिक्षा पूरी हुई । परेटो का परिवार इटली में सन् 1893 तक रहा। फिर उनका परिवार फ्लोरेन्स छोडकर स्विट्जरलैंड चले गए। परेटो की शिक्षा-दिक्षा पहले तो ट्यूरिन विष्वविद्यालय के इन्स्टीट्यूट आफ टेक्नालाजी तथ बाद कि शिक्षा पालीटैक्नीकल स्कुल में हुई थी। यहा पर उन्होने भौतिकषास्त्र तथा इंजीनियर बनना था। उस अवस्था में परेटो ने षायद अपने में भी कभी यह न सोचा था कि एक ऐसा समय भी आएगा जबकि उनका नाम एक इंजीनियर के रूप् मं नही बल्कि एक प्रख्यात अर्थषास्त्री और समाजषास्त्री कें रूप में सम्मानित होगा।

परेटो द्वारा लिखित प्रख्यात कृतियां निम्न हैं- Cours d' Economic politiqe (Lausanne, Vol. I, 1896; Vol. II. 1897), Les Su' Systemes Socioloistes (Paris, 1903), Manuale d' Economia Politica (Milan, 1906), Trattato d' Socilogiagenerale (paris and Lausanne, 1919, translated as 'Mind Society' , 4 Vols, New York, 1935)

परेटो अपने पिता के मानवतावादी और आदर्षवादी विचारो से सहमत नही थे। वह फासिज्म के प्रचारक थे। कुछ लोग इनको फासिज्म का पेगम्बर भी मानते है किन्तु परेटो के मुक्त व्यापार सम्बन्धी विचारों से तत्कालीन सरकार सन्तुश्ट नही हुई। इस कारण परेटो को सार्वजनिक जीवन से मुक्त होना पडा। साथ ही साथ वह इस अनुभव पर पहुंचा कि अच्छे कार्य केवल षक्ति द्वारा ही किये जा सकते है।

परेटो मूल रूप से अर्थशास्त्री था किन्तु समाजशास्त्र को भी परेटो की काफी देने है। परेटो की रचना ट्रिटाइज आर्फ सोसियोलाजी' को समीक्षको ने एक महत्वपूर्ण रचना माना है । इसका श्री आर्थर लिविंगस्टन ने मस्तिश्क और समाज के नाम से अंग्रेजी में अनुवाद किया है जो 1935 में चार खण्डो में प्रकाषित हुई। इस पुस्तक के द्वारा परेटो के भावो का ज्ञान होता हैं। परेटो ने अपने से पहले के विचारकों की रचानाओं को भावुक आचारषास्त्र बतलाया है तथा उन सिद्वान्तों की परीक्षात्मक जांच भी की है। परेटो समाजषास्त्र को एक पूर्ण विज्ञान बनाने की सोचते थे। इस

ही कारण परेटो ने तर्क परीक्षण मूलक का प्रचार किया। इस परीक्षण द्वारा सत्य को उच्च कोटि तक पहुँचाया जा सकता थां।

पैरेटो का समाजशास्त्र के विकास और समाज विज्ञानो को आगे बढाने में एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अर्थशास्त्र में उन्होने राजनितिक अर्थशास्त्र को उॅचाइयों पर पहुचाया। इसका एक मेन्युअल भी तैयार किया। गणितशास्त्र में इन्होने गणितीय साम्यानुकूलन के सिद्वान्त को बनाया। उन्होने गण्तिशास्त्र और अर्थशास्त्र पर जितना भी लिखा सिर्फ इसका उद्देश्य यह था कि इन विषयों को वैज्ञानिक रूप प्रदान करना या वैज्ञानिक स्तर पर रखना। पैरेटो को यह मानना था कि अर्थशास्त्र एक निश्चित और प्रत्यक्षवादी समाजविज्ञान है। समाजशास्त्र को आगे बढाने में उनका योगदान महत्वपूर्ण है। इसिलिए पैरेटो को अग्रणी सामाजिक विचारक माना जाता है उनका समाजशास्त्र को योगदान दो क्षेत्रो में अग्रणी हैः

(1) समाजशास्त्र की वैज्ञानिक अवधारणा

(अ) तार्किक क्रिया

(ब) अतार्किक क्रिया

(स) विशिष्ट चालक

(द) भ्रान्ततर्क

(2) अभिजन वर्ग का परिभ्रमण

पैरेटो का समाजशास्त्र को अनन्य योगदान है। यहा हम केवल उपरोक्त दो तरह के योगदान की ही चर्चा करेगे।

16.3 चक्रीय सिद्वान्त या अभिभ्रमण

समाज में हमेशा विभिन्नता रहती है कोई निम्न वर्ग और कोई उच्च वर्ग में रहता है कोई ठिगना कोई लम्बा , कोई गोरा है तो कोई सांवला , कोई अमीर है तो कोई गरीब कोई प्रखर बुद्वि है तो कोई मंद बुद्वि। मतलब है , शारीरिक , भौतिक , बौद्विक और नैतिक दृष्टि से प्रत्येक समाज में विभिन्नता होती है। यह संभव है कि किसी समाज में विभिन्नता बहुत तीव्र होती है और किसी में न्युन। लेकिन विभिन्नता का स्तर रहता ही है।

पैरेटो ने अभिजन के चक्रीय सिद्वान्त को रखा है। लेकिन यह उनका केवल कोई एक सिद्वान्त हो ऐसा नही है उनके सिद्वान्तों में कुछ और महत्वपूर्ण सिद्वान्त है उदाहरण के लिये उन्होने सामुदायिक उपयोगिता फासीवाद आदि के कतिपय सिद्वान्त भी है। इन सिद्वान्तों में अभिजन का चक्रीय सिद्वान्त बहुत चर्चित रहा है। पैरेटो मूलरूप् से

मुसोलिनी, मेकियावेली के विचारधारा से प्रभावित रहे थे। मुख्य रूप से वह फासीवादी थे। यदि उनके सिद्वान्तो को किसी एक गठरी में बांध दिया जाय तथा उसको पहचानने के लिए कोई चिन्ह लगाने हो तो उस पर लिखा दिया जाना चाहिएःफासीवाद।

पैरेटो ने अभिजन को परिभाषित किया है। वे व्यक्ति जो समाज के किसी एक निश्चित क्षेत्र में विद्वान होते है। अभिजन कहलाते है । समाज के कई महत्वपूर्ण क्षेत्र है- कला , साहित्य, धर्म , व्यवसाय आदि। इन क्षेत्रो मे कई व्यक्ति अभिजन होते है और लोागे की तुलना में अभिजन अधिक विशेष होते है। उदाहरण के रूप में कला में माधुरी दीक्षिति ,लता , अमिताभ बच्चन आदि । हिन्दी साहित्य में रामाचन्द्र शुक्ल, महादेवी बर्मा ,प्रेमचन्द्र अभिजन है। व्यावसायिक क्षेत्र में टाटा, अजीम प्रेम जी, बिडला आदि अभिजन है समाज के विभन्न क्षेत्रो में यदि अभिजन कि तालिका बनायी जाय तो उसका आकार थोडा बृहद होगा। कुछ अभिजन को विवादास्पद भी समझा जा सकता है। अभिजन सभी क्षेत्रो मे है लेकिन पैरेटो ने केवल प्रशासनिक अभिजन को उल्लेख किया है । अब वे अभिजन के चक्रीय सिद्वान्त की बात करते है तब उनका तात्पर्य राज करने वाले या शासन करने वाले अभिजनों से है । उनका कहना है कि समाज पर शासन तो अभिजन ही करते है। लेकिन अभिजन वर्ग बन्द नही है। जो आज शासन करने वाले है , कल उन्हें धकेल दिया जाएगा और उनका स्थान नये अभिजन ले लेगें। समाज में अभिजन का यह चक्र चलता ही रहता है। अभिजन का काम समाज को चलाना है , दूसरे शब्दो में , समाज अभिजन द्वारा ही संचालित होता हैं हर युग और हर देश में समाज का सूत्रधार अभिजन ही रहा है। उसकी अंगुलिया की गति समाज को नचाती है। लोग तो बस अभिजन के संकेत पर ही सांस लेते है। और साँस छोडते है । समाज की इस बुनियादी धारणा के बाद पैरेटो चक्रीय सिद्वान्त रखते है।

अभिजन के प्रकार - अभिजन वो लोग है जो सामान्य लोगो की तुलनाा में अधिक विद्वान होते है। कुशल होते है और किसी काम को पूर्ण करने की क्षमता रखते है। कार्य तो सभी करते है परन्तु अभिजन का कार्य दूसरों से श्रेष्ठ होता है। उनका सिद्वान्त है कि बडी उम्र के नेता धीरे-धीरे बदनाम होते जाते है, उनकी शाख गिरने लगती है और वे नये खून के लिये अपना स्थान छोडना प्रारम्भ करते है। इस तरह के परिवर्तन से समाज की व्यवस्था अपने आप बनी रहती है ।

मिचेल्स की तरह पैरेटो ने सम्पूर्ण अभिजन में दो वर्गो को पाया:-

1 प्रशासनिक वर्ग

2 गैर प्रशासनिक वर्ग

इन दोनो वर्गो में चक्र की तरह पूराने लोग जाते है और नये लोग या अभिजन आते हैं । इस भा ॅति अभिजन के चक्रीय सिद्वान्त का मूल रूप यह है कि प्रशासनिक अभिजन कमजोर हो जाते है या उन्हे कमजोर कर दिया जाता है और उनका स्थान नये अभिजन ले लेते है । यह चक्र है । इस कई बार अभिजन का परिभ्रमण भी कहते है।

इन दो वर्गो में दो तरह के अभिजन होते है । एक अभिजन को पैरेटो लोमडी कहते है । लोमडी से उनका तात्पर्य उन अभिजनो से है जो चालाक , छल, कपट करते है । जब पैरेटो लोमडी शब्द का प्रयोग करते है। तब उनका तात्पर्य ऐसे लोगो से है जो चालक और कपटी है । संस्कृत साहित्य में हितोपदेश की कहानियां वस्तुतः जानवारो से जुडी कहानियां है। इन जानवारों में लोमडी सबसे अधिक चालाक समझी जाती है एक कहानी में जब ब्राह्मण पिजंरे में बन्द शेर का मुक्त कर देता है तो शेर उसी ब्राह्मण को खाने को उतावला हो जाता है । यहा लोमडी को निर्णायक बनाया जाता हैं। और लोमडी की चतूराई देखने लायक थी की वह शेर को पुनः पिंजरे में बंद देखना चाहती है जिससे उसे विश्वास हो सके कि इतना बडा शेर पिंजरे में आ सकता है । उसकी बात को मान कर शेर पिंजरे में प्रवेश करता है और लोमडी तुरन्त पिंजरे का दरवाजा बन्द कर देती है क्योकि लोमडी ,चतुर और चालक थी।

कुछ ऐसे ही अभिजन भी होते है जो सत्ता प्राप्त करने के लिए उल्टे-सुल्टे रास्ते अपनाते है वे सत्ता सुख भोगने अभिजन को धकेल देते है । वह अभिजन जो सभा में है जिसके पास शक्ति है उन्हें पैरेटो शेर कहते है । शेर की एक खासियत है । उसे जो कुछ सत्ता मिलती है उस पर वह कुण्डली मारकर बैठ जाता है। सत्ता के सिहांसन पर बैठे हुए ये अभिजन वास्तव मे नर-नाहर होते है। और वे अपनी पूरी ताकत को लागकर अपनी सत्ता को बनाये रखना चाहता है।

पैरेटो के अनुसार लोमडी और शेर दोनो ही अभिजन वर्ग में हैं । दोनो ही सत्ता को पाने को तत्पर रहते है। अभी शेर सत्ता मे है और थोडे समय बाद चालक लोमडी अभिजन उसे सत्ता से धकेल देते है। पैरेटो का यही चक्रीय सिद्वान्त है। यही अभिजन का परिभ्रमण है। अभिजन की नियति एक ही है। शेर हो या लोमडी दोनो को एक दूसरे के लिये सिहांसन छोडना पडेगा । इस चक्रीय सिद्वान्त का मूल यह है कि समाज पर हुकूमत तो अभिजन की ही होगी । चाहे ये अभिजन आज के शेर हो या कल कोई लोमडी।

बोध प्रश्न 1

1- पैरेटो ने सम्पूर्ण अभिजन में दो वर्गो को पाया

(क) प्रशासनिक वग (ख)--------------------

2- परेटो मूल रूप से----------------------- थे

16.4 सारांश

संक्षेप में कहा जा सकता है कि पैरेटो द्वारा चक्रीय सिद्वान्त के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि समाज में सत्ता और शासन अभिजन वर्ग का ही रहता है। पैरेटो कि अनेको कृतियो में से एक माइन्ड एण्ड सोसायटी प्रसिद्व रही । उन्होने समाजशास्त्र को अनेको योगदान दिये उनमें से कुछ मुख्य है जैसे समाजशास्त्र अ-तार्किक क्रियाओ का अध्ययन करता है, और यह कि हमें समाज को तार्किक प्रयोगात्मक बनाना होगा।

16.5 संदर्भ सूची

James Alexander, Vilfredo Pareto: The Karl Marx of Fascism, 2009

V. Pareto, Cours d'Economie Politique. Droz, Geneva, 1896.

हारालाम्बोस एम0, (1998), सोशियोलोजी: थीम्स एण्ड प्रर्सपेक्टिव, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली

टर्नर, जे0 एच0, (1916) स्ट्रक्चर आफ सोशियोलोजिकल थ्योरी, रावत पब्लिकेशन, जयपुर

16.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1- गैर प्रशासनिक वर्ग

2- अर्थशास्त्री

16.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. पैरेटो के चक्रीय सिद्वान्त या अभिभ्रमण की सविस्तार व्याख्या कीजिए।

3. पैरेटो का समाजशास्त्र में योगदान की विवेचना कीजिए।